REG. NO. RAJHIN /2002/14707

उत्तमा वृत्तिस्तु कृषिकर्मैव

चौखी खेती

फरवरी, 2026

किसानों के लिए डिजिटल कृषि प्रसार : खेती में नई दिशा

अनिशा[1], हेमराज बोदल्या[1], सोनिया सारण[2] और रवीना बिश्नोई[3]

भारत की कृषि व्यवस्था आज ऐसे दौर से गुजर रही है जहाँ किसानों को सही समय पर विश्वसनीय जानकारी मिलना अत्यंत आवश्यक हो गया है। मौसम में तेजी से हो रहे बदलाव,बाजार की अनिश्चितता, कीट रोगों की बढ़ती समस्या और सीमित संसाधनों के कारण किसान वैज्ञानिक सलाह पर अधिक निर्भर हो रहे हैं। ऐसे समय में डिजिटल कृषि प्रसार किसानों के लिए एक सशक्त साधन बनकर उभरा है। डिजिटल कृषि प्रसार के माध्यम से किसान मोबाइल फोन, इंटरनेट, सोशल मीडिया, डिजिटल ऐप, वीडियो प्लेटफॉर्म और ऑनलाइन प्रशिक्षण के जरिए घर बैठे आधुनिक कृषि तकनीक, विशेषज्ञ सलाह और बाजार संबंधी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इससे न केवल उनकी निर्णय क्षमता मजबूत होती है, बल्कि उत्पादन, गुणवत्ता और आय में भी सकारात्मक सुधार देखने को मिलता है। सरकार और निजी क्षेत्र द्वारा विकसित डिजिटल प्लेटफॉर्म किसानों को अधिक सशक्त, जागरूक और तकनीक समर्थ बना रहे हैं।

भारत सरकार ने 2024 में डिजिटल कृषि मिशन शुरू किया है, जिसका उद्देश्य किसानों को डिजिटल पहचान, व्यक्तिगत सलाह और तकनीक आधारित सेवाएँ उपलब्ध कराना है। यह दर्शाता है कि डिजिटल प्रसार अब कृषि विकास का एक महत्वपूर्ण और मजबूत आधार बन चुका है।

डिजिटल प्रसार अब केवल सूचना का माध्यम नहीं, बल्कि किसानों के लिए ज्ञान, नवाचार और सशक्तिकरण का आधार बन चुका है।

डिजिटल कृषि प्रसार का अर्थ

डिजिटल कृषि प्रसार का मतलब है—किसानों तक कृषि से जुड़ी जानकारी, तकनीक, सलाह और प्रशिक्षण को मोबाइल फोन, इंटरनेट, सोशल मीडिया, मोबाइल ऐप, डिजिटल पोर्टल, इंटरएक्टिव वॉयस रिस्पॉन्स कॉल और अन्य सूचना और संचार प्रौद्योगिकी साधनों के माध्यम से पहुँचाना। यह पारंपरिक प्रसार प्रणाली को और अधिक तेज, सरल और सुलभ बनाता है।

भारत सरकार के एग्री स्टैक कार्यक्रम के अंतर्गत 2024–25 में किसानों की किसान पंजीकरण, फसल रोपण पंजीकरण और भौगोलिक संदर्भित ग्राम मानचित्र पंजीकरण विकसित किए जा रहे हैं। इन रजिस्ट्रियों के माध्यम से किसानों को नवोन्मेषी और किसान केंद्रित डिजिटल समाधान उपलब्ध होते हैं तथा सभी किसानों को समय पर और विश्वसनीय फसल संबंधी जानकारी प्राप्त होती है।

किसानों के लिए डिजिटल कृषि प्रसार की प्रमुख भूमिकाएँ–

किसानों के लिए डिजिटल कृषि प्रसार की प्रमुख भूमिका आधुनिक तकनीक, वास्तविक समय जानकारी और व्यक्तिगत सलाह के माध्यम से खेती को अधिक स्मार्ट, सुलभ और लाभकारी बनाना है।

1.तुरंत और वास्तविक समय में जानकारी उपलब्ध कराना

डिजिटल माध्यम किसानों को तुरंत और वास्तविक समय में उपयोगी जानकारी

[1]विद्यावाचस्पति छात्रा / छात्र (कृषि प्रसार तथा संचार विभाग) स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान–334006
[2]विद्या वाचस्पति शोधार्थी (कृषि प्रसार शिक्षा विभाग) श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर, राजस्थान–303329
[3]विद्यावाचस्पति छात्रा (कृषि अर्थशास्त्र विभाग) स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर, राजस्थान–334006

उपलब्ध कराते हैं, जिससे वे बदलते हालातके अनुसार शीघ्र निर्णय ले पाते हैं। इन प्लेटफॉर्मों के माध्यम से किसानों को मौसम की तत्कालीन स्थिति (किसान सुविधा ऐप, कृषि सेतु ऐप, मेघदूत मोबाइल ऐप, कीट रोग नियंत्रण के उपाय, फसल विशेष तकनीकी सलाह और बाजार में चल रहे भाव जैसी महत्वपूर्ण जानकारी तुरंत प्राप्त होती है। इस प्रकार डिजिटल तकनीक किसानों को समय पर, सटीक और स्थान विशिष्ट जानकारी देकर उनकी खेती को अधिक सुरक्षित और लाभकारी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, और नुकसान होने की संभावना को कम करती है।

2. कम लागत में सुलभ प्रसार सेवा

डिजिटल माध्यम किसानों के लिए कम लागत में सुलभ प्रसार सेवाएँ उपलब्ध कराने का एक अत्यंत प्रभावी माध्यम बन गया हैं। पारंपरिक प्रसार प्रणाली में जहाँ किसानों को प्रशिक्षण और जानकारी प्राप्त करने के लिए यात्रा करनी पड़ती थी जिससे समय तथा धन दोनों खर्च होते थे, वहीं डिजिटल माध्यमों के जरिए यह प्रक्रिया बेहद सरल और किफायती हो गई है। अब किसान घर बैठे मोबाइल फोन, इंटरनेट या वीडियो प्लेटफॉर्म के माध्यम से प्रशिक्षण ले सकते हैं, विशेषज्ञों की सलाह सुन सकते हैं और नई तकनीकों को सीख सकते हैं। वीडियो सामग्री और डिजिटल मॉड्यूल को किसान अपनी सुविधा के अनुसार कई बार देख सकते हैं, जिससे सीखने की प्रक्रिया और भी मजबूत होती है। इस प्रकार डिजिटल प्रसार न केवल लागत कम करता है, बल्कि किसानों को अधिक लचीला, सुलभ और निरंतर सीखने का अवसर भी प्रदान करता है, जैसे डीहाट (DeHaat) डिजिटल प्लेटफॉर्म ने 2024 तक 18 लाख किसानों को कम लागत में सेवाएँ प्रदान की हैं।

3. अधिक किसानों तक पहुँच

पारंपरिक कृषि प्रसार प्रणाली अपनी सीमाओं के कारण एक समय में केवल कुछ किसानों तक ही पहुँच पाती है, जबकि डिजिटल माध्यमों ने इस पहुँच को कई गुना बढ़ा दिया है। डिजिटल प्लेटफॉर्म जैसे यूट्यूब, फेसबुक लाइव, व्हाट्सऐप समूह और ऑनलाइन वेबिनार एक साथ हजारों किसानों को जोड़ने की क्षमता रखते हैं, जिससे जानकारी का प्रसार तेज, व्यापक और अधिक प्रभावी हो जाता है। इन माध्यमों के जरिए किसान न केवल विशेषज्ञों की सलाह सुन सकते हैं, बल्कि लाइव सत्रों में प्रश्न पूछकर तुरंत समाधान भी प्राप्त कर सकते हैं। इससे दूरस्थ क्षेत्रों के किसान भी आसानी से जानकारी प्राप्त कर लेते हैं।

4. किसान से किसान सीखने को प्रोत्साहन

डिजिटल प्लेटफॉर्म ने किसान से किसान सीखने की परंपरा को एक नई दिशा और गति प्रदान की है। पहले जहाँ किसान केवल अपने गाँव या आसपास के क्षेत्रों तक सीमित अनुभव साझा कर पाते थे, वहीं अब डिजिटल माध्यमों के जरिए वे अपने ज्ञान, सफलताओं और नवाचारों को व्यापक स्तर पर साझा कर सकते हैं। सफलता की वीडियो कहानियाँ, सोशल मीडिया चर्चाएँ और विभिन्न किसान समूह किसानों को एक–दूसरे के अनुभवों से सीखने का अवसर प्रदान करते हैं। इन माध्यमों के जरिए स्थानीय ज्ञान, पारंपरिक तकनीकें और व्यावहारिक समाधान तेजी से फैलते हैं, जिससे किसान वास्तविक परिस्थितियों में आजमाए गए उपायों को अपनाकर अपनी खेती में सुधार कर पाते हैं। इस प्रकार डिजिटल प्लेटफॉर्म न केवल जानकारी का आदान प्रदान बढ़ाते हैं, बल्कि किसानों के बीच सहयोग, प्रेरणा और सामूहिक सीखने की संस्कृति को भी मजबूत बनाते हैं।

5. स्थान–विशिष्ट और व्यक्तिगत सलाह

डिजिटल तकनीक ने कृषि सलाह को पहले से कहीं अधिक सटीक, व्यक्तिगत और स्थान–विशिष्ट बना दिया है। अब किसानों को सामान्य या व्यापक जानकारी पर निर्भर नहीं रहना पड़ता, बल्कि उनके क्षेत्र, मिट्टी, मौसम और फसल की वास्तविक स्थिति के आधार पर सलाह उपलब्ध होती है। जिला कृषि मौसम इकाई (District Agro-Met Unit) द्वारा जारी की जाने वाली मौसम आधारित सलाह किसानों को आने वाले दिनों के तापमान, वर्षा, हवा की गति और आर्द्रता के अनुसार फसल प्रबंधन के निर्णय लेने में मदद करती है। इसी तरह, फसल विशेष मोबाइल ऐप किसानों को बीज चयन से लेकर पोषक तत्व प्रबंधन, सिंचाई, कीट रोग नियंत्रण और कटाई तक हर चरण में वैज्ञानिक मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। भौगोलिक सूचना प्रणाली आधारित डिजिटल जानकारी खेत की भौगोलिक स्थिति, मिट्टी के प्रकार, जल उपलब्धता और जोखिम वाले क्षेत्रों का विश्लेषण करके किसानों को अधिक सटीक निर्णय लेने में सक्षम बनाती है। इन सभी तकनीकों का संयुक्त प्रभाव यह है कि किसान अपनी फसल, खेत और स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप बेहतर रणनीतियाँ बना पाते हैं, जिससे उत्पादन, गुणवत्ता और लाभ दोनों में सुधार होता है।

6. महिला और युवा किसानों की भागीदारी बढ़ाना

डिजिटल तकनीक ने कृषि क्षेत्र में महिलाओं और युवाओं की भागीदारी को एक नई दिशा और गति दी है। पहले जहाँ प्रशिक्षण, बाजार पहुँच और संसाधनों की कमी के कारण उनकी भूमिका सीमित रह जाती थी, वहीं अब डिजिटल माध्यमों ने उन्हें घर बैठे सीखने, कमाई करने और उद्यमिता की ओर बढ़ने का अवसर प्रदान किया है।

ऑनलाइन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से महिलाएँ और युवा आधुनिक कृषि तकनीक, प्रसंस्करण, पैकेजिंग और विपणन जैसे कौशल आसानी से सीख पा रहे हैं। डिजिटल प्लेटफॉर्म पर उत्पादों की ऑनलाइन बिक्री ने उन्हें स्थानीय बाजारों की सीमाओं से बाहर निकालकर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय ग्राहकों तक पहुँचने का अवसर दिया है। इसके साथ ही, एग्री स्टार्टअप के बढ़ते अवसरों ने युवाओं को नवाचार, तकनीक और उद्यमिता के माध्यम से कृषि को एक आधुनिक और लाभकारी व्यवसाय के रूप में अपनाने के लिए प्रेरित किया है। इन सभी प्रयासों का परिणाम यह है कि डिजिटल माध्यम न केवल महिलाओं और युवाओं को सशक्त बना रहे हैं, बल्कि कृषि क्षेत्र में नवाचार, रोजगार और उद्यमिता की नई लहर भी पैदा कर रहे हैं।

7. बाजार से बेहतर जुड़ाव

डिजिटल प्लेटफॉर्म ने किसानों के लिए बाजार तक पहुँच को पहले से कहीं अधिक आसान, पारदर्शी और लाभकारी बना दिया है। आज किसान ई मार्केट, ऑनलाइन मंडियों और डिजिटल भुगतान प्रणालियों के माध्यम से सीधे खरीदारों से जुड़ सकते हैं, जिससे उन्हें अपने उत्पादों का वास्तविक मूल्य प्राप्त करने का अवसर मिलता है। बाजार भाव के नियमित अपडेट किसानों को यह समझने में मदद करते हैं कि किस समय और किस स्थान पर अपनी उपज बेचना अधिक फायदेमंद रहेगा। डिजिटल माध्यमों ने सौदागरों पर निर्भरता को काफी हद तक कम किया है, क्योंकि अब किसान अपनी उपज को सीधे व्यापारियों, कंपनियों और उपभोक्ताओं तक पहुँचा सकते हैं। राष्ट्रीय कृषि बाजार (e-NAM) प्लेटफॉर्म ने कृषि व्यापार में एक बड़ा बदलाव लाया है। देशभर की हजारों मंडियों को जोड़कर इसने किसानों को डिजिटल विपणन, पारदर्शी बोली प्रक्रिया और बेहतर मूल्य खोज का अवसर प्रदान किया है।

डिजिटल कृषि प्रसार की चुनौतियाँ

1.डिजिटल साक्षरता की कमी

ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी बड़ी संख्या में किसान स्मार्टफोन और डिजिटल प्लेटफॉर्म का प्रभावी उपयोग नहीं कर पाते। तकनीक की समझ सीमित होने के कारण वे उपलब्ध डिजिटल सेवाओं का पूरा लाभ नहीं उठा पाते। इससे डिजिटल प्रसार की पहुँच और प्रभाव दोनों प्रभावित होते हैं।

2. इंटरनेट कनेक्टिविटी की समस्या

कई गाँवों में इंटरनेट की गति धीमी या नेटवर्क उपलब्ध ही नहीं होता, जिससे ऑनलाइन प्रशिक्षण, वीडियो सामग्री और मौसम अपडेट समय पर नहीं मिल पाते। कमजोर कनेक्टिविटी डिजिटल सेवाओं की विश्वसनीयता और उपयोगिता को कम कर रही है।

3. भाषा और सामग्री की जटिलता

अधिकांश डिजिटल सामग्री तकनीकी भाषा में होती है, जिसे किसान आसानी से समझ नहीं पाते। स्थानीय भाषाओं में सरल, व्यावहारिक और किसान अनुकूल सामग्री की कमी डिजिटल सीखने की प्रक्रिया को कठिन बना रही है।

4. गलत जानकारी का प्रसार

सोशल मीडिया और अनौपचारिक प्लेटफॉर्म पर कई बार अप्रमाणित या गलत कृषि जानकारी तेजी से फैल जाती है। ऐसी गलत सलाह किसानों के निर्णयों को प्रभावित कर रही है और नुकसान का कारण भी बन सकती है।

समाधान और सुझाव

- स्थानीय भाषा में सरल डिजिटल सामग्री तैयार करना
- किसानों के लिए डिजिटल साक्षरता कार्यक्रम जैसे–प्रधानमंत्री ग्रामीण डिजिटल साक्षरता अभियान, ICAR–NAHEP डिजिटल एग्रीकल्चर ट्रेनिंग, गैर सरकारी संगठन और निजी कंपनियों के डिजिटल प्रशिक्षण कार्यक्रम
- विश्वसनीय डिजिटल प्लेटफॉर्म को बढ़ावा
- प्रसार कर्मियों को सूचना और संचार प्रौद्योगिकी उपकरणों का प्रशिक्षण
- किसान से किसान डिजिटल नेटवर्क को मजबूत करना

निष्कर्ष

डिजिटल कृषि प्रसार ने खेती को पारंपरिक सीमाओं से निकालकर एक नए, आधुनिक और तकनीक आधारित युग में प्रवेश कराया है, जहाँ किसान केवल अनुभव पर नहीं, बल्कि डेटा आधारित और वैज्ञानिक सलाह पर निर्णय ले रहे हैं। मौसम, बाजार और तकनीक से जुड़ी वास्तविक समय की जानकारी ने उनकी जोखिम प्रबंधन क्षमता को मजबूत किया है, जबकि डिजिटल प्लेटफॉर्मों ने उनकी पहुँच को गाँव से बढ़ाकर वैश्विक स्तर तक विस्तारित कर दिया है। महिलाओं और युवाओं की बढ़ती डिजिटल भागीदारी ने कृषि में नवाचार और उद्यमिता को नई गति दी है, और ऑनलाइन बाजारों व राष्ट्रीय कृषि बाजार जैसे प्लेटफॉर्मों ने व्यापार को अधिक पारदर्शी और लाभकारी बनाया है। डिजिटल साक्षरता और इंटरनेट जैसी चुनौतियाँ अभी मौजूद हैं, लेकिन इनके समाधान भी तेजी से विकसित हो रहे हैं। सरकारी और निजी पहलें मिलकर डिजिटल कृषि को और अधिक सुलभ, प्रभावी और किसान हितैषी बना रही हैं। किसानों के बीच ज्ञान विनिमय और सीखने की संस्कृति पहले से कहीं अधिक मजबूत हुई है, जिससे खेती अधिक स्मार्ट, सुरक्षित, लाभकारी और भविष्य उन्मुख बनती जा रही है।

लो टनल तकनीक द्वारा ऑफ सीजन में सब्जियों की खेती से आय में वृद्धि

कुलदीप हरियाणा[1], डॉ. राजू लाल भारद्वाज[2], डॉ. कुलदीप सिंह राजावत[3], मयंक शर्मा[1], पियूष चन्देल[1]

सब्जियां विटामिन्स लवणी कार्बोहाइड्रेट्स तथा प्रोटीन्स का समृद्ध स्रोत होती है। स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ने, अधिक जनसँख्या वृद्धि दर होने आहार पैटर्न बदलने एवं पैकेज्ड सब्जियों की उपलब्धता के फलस्वरूप देश में घरेलु व निर्यात आपूर्ति हेतु ताजा सब्जियो की साल भर भाँग रहती है, किन्तु प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों के कारण फसल सीजन में सब्जियों की भरमार रहती है तथा ऑफ सीजन में इनके दाम आसमान छूने लगते हैं। सब्जियों का बाजार भाव फसल सीजन के शुरू एवं अंत में अधिक रहता है। सर्दी के दिनों में खुले खेतों में कम तापमान व पाले की दशा होने के कारण ग्रीष्म कालीन सब्जियां उगाना संभव नहीं होता है, इसलिए इन सब्जियों को पॉलिथीन टनल्स में उगाया जाता है, जहाँ इनकी बढ़वार व उपज के लिए उपयुक्त वातावरण उपलब्ध कराया जाता है। ग्रीन हाउस, लो टनल तथा हाई टनल तकनीक के प्रादुर्भाव, जिससे सब्जियों की बढ़वार हेतु तापमान एवं आद्रता पर नियत्रण रहता है, सब्जियां ऑफ सीजन में उगाई जा सकती है। लो टनल द्वारा फसल हेतु सुक्ष्म पारिस्थितिकी में सुधार होता है और वाष्पोत्सर्जन व जल मांग में कमी आती है, परिणामतरू फसल उत्पादकता, जल उपयोग दक्षता, पोषण उपयोग दक्षता व भूमि उपयोग दक्षता में वृद्धि होती है। सब्जियों की वर्ष भर खेती होने से किसान उनके उपलब्ध संसाधनों का पूर्ण उपयोग कर पाते है और उनकी आय में बढ़ोतरी होती है।

लो टनल तकनीक का सिद्धांत

1. टनल के अंदर शीतकाल में ग्रीष्मकाल के समतुल्य वातावरण की दशाएँ मिल जाती हैं जिससे गर्मी की ऋतु में उगने वाली फसलें टनल तकनीक द्वारा सर्दी की ऋतु में पैदा की जा सकती हैं।
2. खेत में बांस/लोहा/एल्यूमिनियम पाइप से बनी 'डी' आकृति की संरचना बनाई जाती है, जो कि पारदर्शी पॉलिथीन की शीट से ढकी होती है।
3. मृदा को भी काले रंग की पॉलिथीन शीट से ढक दिया जाता है, दिन के समय सूर्य की रोशनी पारदर्शी पॉलिथीन शीट से होकर गुजरती है और काली पॉलिथीन से ढकी हुई मृदा द्वारा अवशोषित कर ली जाती है।
4. इससे टनल के अंदर का तापमान वांक्षित स्तर तक पहुँच जाता है।
5. मृदा के ऊपर प्लास्टिक शीट के तीन मुख्य उद्देश्य होते हैं :

यह ताप को रोकती है।
पानी के हास को कम करती है।
खरपतवार की वृद्धि को रोकती है।

लो टनल ढांचा

लो टनल या प्लास्टिक टनल तकनीक, खेती करने का एक आधुनिक तरीका है। लो टनल्स ग्रीन हाउस की तरह प्रभाव वाली लघुरूप सरचनाएँ होती हैं। स्टील की छड़ों, बास या पाइप को मोड़कर अर्द्ध चन्द्राकार (आधा गोलाकार) संरचना बनाकर प्लास्टिक सीट से ढक दिया जाता है। जिसमें खेत में एक मीटर चौड़ी क्यारिया तैयार की जाती है तथा उन पर टपक सिंचाई हेतु लाइन फैलाकर रख दी जाती है। इन तैयार क्यारियों पर अर्द्धचन्द्राकार (आधा गोलाकार) की संरचना को लोहे के तारों द्वारा जोड़कर 75 से 110 से.मी ऊंचाई का ढांचा तैयार कर लिया जाता है। यह ढाचा कम लागत में तैयार हो जाता है तथा उपयोग के बाद इसके हिस्सों को अलग–अलग खोल कर अगले साल प्रयोग के लिए रखा जा सकता है। इसमें खेत में तैयार की गई क्यारियों को प्लास्टिक की शीट से ढककर संरक्षित किया जाता है इस तकनीक से कई तरह के फायदे होते है:

इस तकनीक द्वारा अगेती सब्जियों की खेती जा सकती है, जिससे सब्जियों का अधिक भाव लेकर अच्छा लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

डाइऑक्साइड का उपयोग कर प्रकाश संश्लेषण क्रिया को बढाकर फसल की उपज में वृद्धि करती है।

- स्वस्थ एवं अगेती नर्सरी लगाई जा सकती है।
- उच्च गुणवत्ता व उच्च मूल्यवान फसल की वर्षा, वायु, पाले, रोग व कीटों से सुरक्षा होती है।
- फसल विविधीकरण के अवसर तथा उच्च गुणवत्ता व स्वच्छ उत्पाद पैदा करने में सहायक है।
- जिन क्षेत्रों में खुले खेतों में सब्जी उगाना सभव न हो, वहाँ भी सब्जियों की खेती की जा सकती है, जैसे कि अधिक ऊचाई वाले स्थानों पर।
- लो टनल में कीट–रोगों का खतरा कम रहता है।
- पौधों को मौसम की अनिश्चितताओं अधिक हवा, वर्षा, पाला व बर्फ से भी सुरक्षा करता है।
- लो टनल्स के अंदर का तापमान में वृद्धि होती है, मिट्टी के तापमान का नियंत्रण होता है, अंकुरण व पौध वृद्धि को बढ़ावा मिलता है।
- सब्जियों और फल समय से पहले ही पककर तैयार हो जाते हैं।
- इस तकनीक से पानी व खाद की बचत

1 विद्यावाचस्पति छात्र, 2 आचार्य, 3 सहायक आचार्य, उद्यान विज्ञान विभाग, कृषि विश्वविद्यालय–जोधपुर
ईमेल: gurjarkuldeep002@gmail.com

होती है।

गुणवत्ता में सुधार होता है। इसके अलावा मृदा संरचना में सुधार होता है तथा पक्षियों व कीटों से फसल की सुरक्षा होती है।

लो टनल तकनीक से मुख्य रूप से उच्च गुणवत्ता व उच्च मूल्यवान पौध व फसलों जैसे कि टमाटर, मिर्च, खीरा, तरबूज, करेला, लौकी, खरबूजा, मूली, बीन्स और ग्रीष्मकालीन स्क्वैश जैसी सब्जियां उगाई जाती है। इस तकनीक का इस्तेमाल ज्यादातर ज्यादा सर्दी या बारिश के मौसम में किया जाता है।

निर्माण लागत (प्रति 100 वर्ग मीटर)

क्र. स.	विवरण	तादाद	दर (रु.)	राशि (रु.)
1	बांस	28	150 / बांस	4200
2	प्लास्टिक (120 बैड)	9 किग्रा	145 / किग्रा	1305
3	बांधने का तार	2-5 किग्रा	100 / किग्रा	250
4	विविध			2000
	कुल राशि			7755

नोटः निर्माण लागत प्रति प्लास्टिक टनल आकर 15-1.5 मीटर = रुपये 1745

खेत की तैयारी

खेत की अच्छी तरह जुताई कर पाटा लगाकर मिटटी भुरभरी बना लेनी चाहिए। तदोउपरांत एक मीटर चौड़ी 4 से 5 इंच ऊँचाई की बेड़ बना ली जाती है। अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद 1.5-2.0 किग्रा प्रति वर्ग मी. या वर्मीकम्पोस्ट 0.5-1.0 किग्रा प्रति वर्ग मी. तथा नीम की खली 200 ग्रा. प्रति वर्ग मी. की दर से मिटटी में मिला देते है।

फसल एवं संस्तुत किस्में

क्र. स.	फसल	किस्में
1	तरबूज	अर्का श्यामा, अर्का ऐश्वर्या, अर्का माणिक, दुर्गापुरा मीठा, दुर्गापुरा केसर, दुर्गापुरा लाल
2	खीरा	पूसा लॉन्ग ग्रीन, काशी नूतन (संकर)
3	शिमला मिर्च	अर्का बसंत, अर्का गौरव, अर्का मोहिनी
4	लौकी	अर्का नूतन, अर्का गंगा, अर्का बहार
5	खरबूजा	अर्का सीरी, अर्का जीत, दुर्गापुरा मधु, आर एम-43, एम एच वाई-5, आर एम-50
6	करेला	अर्का हरित, पूसा हाइब्रिड 4, काशी उर्वशी
7	काशीफल	अर्का चन्दन, अर्का सूर्यमुखी
8		पूसा सदाबहार (संकर), अर्का लोहित, अर्का हरिता (संकर) , अर्का मेघना (संकर) , आर सी एच-1
9	तुरई	अर्का विक्रम, अर्का प्रसन
10	ककड़ी	अर्का शीतल
11	टिंडा	अर्का टिंडा, पूसा रौनक
12	टमाटर	अर्का विशेष, अर्का अपेक्षा, अर्का रक्षक, अर्का सम्राट, अर्का विकास

अन्तरशष्य एवं सिंचाई

फसल को खरपतवार रहित रखने के लिए सामान्यतः दो–तीन निराई गुड़ाई की आवश्यकता होती है। सब्जियों की सामान्य एवं लगातार वृद्धि हेतु मिटटी में पर्याप्त नमी होना आवश्यक होती है, अत: मौसम के अनुसार 10–15 दिन के अंतराल से सिचाई की जाती है। शुष्क अवस्था का सब्जियों की गुणावला एव उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

लो टनल खेती पर अनुदान

राजस्थान सरकार के कृषि विभाग द्वारा लो टनल खेती केलिए किसानो को अनुदान दिया जाता है। अनुदान प्राप्त करने के लिए प्रार्थी राजस्थान का मूल निवासी जिसके पास स्वयं का खेत व पानी का साधन होना चाहिए। अधिकतम 1000 वर्ग मीटर तक क्षेत्र के लिए 50 प्रतिशत अनुदान देय है तथा लघु एवं सीमान्त कृषकों के लिए अधिकतम 4000 वर्ग मीटर क्षेत्र हेतु 75 प्रतिशत अनुदान दिया जाता है। बागवानी विभाग द्वारा प्रशासनिक स्वीकृति जारी होने के बाद ही लो टनल का निर्माण किया जा सकता है।

प्रधानमंत्री किसान ऊर्जा सुरक्षा एवं उत्थान महाभियान (पीएम-कुसुम)

शिफाली[1] एवं डॉ. सीमा त्यागी[2]

परिचय

प्रधानमंत्री किसान ऊर्जा सुरक्षा एवं उत्थान महाभियान, जिसे संक्षेप में पीएम–कुसुम योजना कहा जाता है, भारत सरकार द्वारा चालू की गई एक प्रमुख ऊर्जा–कृषि संबंधी योजना है। इस योजना को नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय (एमएनआरई) के तत्वावधान में शुरू किया गया है। इसका मूल उद्देश्य देश के किसानों को स्वच्छ, नवीकरणीय ऊर्जा के माध्यम से आत्मनिर्भर बनाना तथा कृषि उत्पादन में ऊर्जा–सम्बंधी लागत को कम करना है। यह योजना किसानों को पारंपरिक डीजल और ग्रिड बिजली पर निर्भरता से मुक्त कर सौर ऊर्जा जैसे पर्यावरण–अनुकूल विकल्पों को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करती है। इसके माध्यम से न केवल किसानों को सिंचाई हेतु सस्ती और विश्वसनीय ऊर्जा उपलब्ध होती है, बल्कि उन्हें अतिरिक्त बिजली उत्पादन कर उसे ग्रिड में बेचने का अवसर भी मिलता है। परिणामस्वरूप, किसानों की आय में वृद्धि होती है और ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा सुरक्षा को बल मिलता है। साथ ही, पीएम–कुसुम योजना कृषि क्षेत्र में नवीकरणीय ऊर्जा के उपयोग को बढ़ावा देकर पर्यावरण संरक्षण, कार्बन उत्सर्जन में कमी और सतत विकास के लक्ष्यों को भी सशक्त करती है। इस प्रकार, यह योजना कृषि, ऊर्जा और पर्यावरण के बीच संतुलन स्थापित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल सिद्ध हो रही है।

योजना की पृष्ठभूमि और आवश्यकता

कृषि क्षेत्र में सिंचाई, उत्पादन और अन्य कार्यों के लिए बिजली और डीजल पंपों का उपयोग अत्यधिक होता है। इससे न केवल किसानों की लागत बढ़ती है बल्कि जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता बढ़ने के कारण पर्यावरण पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इन समस्याओं के समाधान हेतु पीएम–कुसुम योजना की स्थापना की गई, जो किसानों को सस्ते और स्वच्छ ऊर्जा संसाधन उपलब्ध कराने में मदद करती है।

योजना के प्रमुख उद्देश्य

- मार्च 2026 तक लगभग 34,800 मेगावाट सौर ऊर्जा क्षमता जोड़ना
- किसानों को सौर ऊर्जा आधारित सिंचाई पंप उपलब्ध कराना
- डीजल एवं ग्रिड बिजली पर निर्भरता कम करना
- कृषि क्षेत्र में ऊर्जा सुरक्षा सुनिश्चित करना
- किसानों की आय में वृद्धि करना और ग्रामीण रोजगार सृजन को बढ़ावा देना

योजना के प्रमुख घटक

पीएम–कुसुम योजना को मुख्य रूप से तीन घटकों में विभाजित किया गया है–

1. घटक–क: विकेंद्रीकृत ग्रिड–कनेक्टेड सौर ऊर्जा संयंत्र

- इस घटक के अंतर्गत 500 किलोवाट से 2 मेगावाट तक के सौर ऊर्जा संयंत्र स्थापित किए जाते हैं।
- ये संयंत्र व्यक्तिगत किसान, किसान समूह, पंचायतें, सहकारी समितियाँ और किसान उत्पादक संगठन लगा सकते हैं।
- उत्पादित सौर बिजली को राज्य ऊर्जा वितरण कंपनियाँ (डिस्कॉम) निर्धारित फीड–इन–टैरिफ पर खरीदती हैं।
- इससे किसान अतिरिक्त आय अर्जित कर सकते हैं।

2. घटक–ख: स्टैंड–अलोन सौर कृषि पंप

- उन क्षेत्रों के लिए हैं जहाँ ग्रिड बिजली उपलब्ध नहीं है।
- 7.5 हॉर्सपावर (हॉर्स पावर) तक के सोलर पंप लगाए जाते हैं।
- पंप की लागत के लिए केंद्र और राज्य सरकारें सब्सिडी प्रदान करती हैं, जिससे किसान का शुरुआती निवेश कम होता है।
- किसान बैंक ऋण के माध्यम से भी शेष राशि का भुगतान कर सकते हैं।

3. घटक–ग : ग्रिड–कनेक्टेड पंपों तथा फीडरों का सौरीकरण

- पहले से ग्रिड से जुड़े कृषि पंपों पर सौर पैनल लगाए जाते हैं।
- किसान दिन के समय सौर ऊर्जा से सिंचाई कर सकते हैं और अतिरिक्त बिजली डिस्कॉम को बेच सकते हैं।
- इससे दिन के समय बिजली उपलब्धता सुनिश्चित होती है और उत्पादन में वृद्धि होती है।

लाभ और प्रभाव

आर्थिक लाभ

- किसानों की सिंचाई हेतु बिजली

[1] स्नातकोत्तर विद्यार्थी [2] सहायक आचार्य प्रसार
शिक्षा एवं संचार प्रबंधन विभाग, सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय बीकानेर

लागत कम होती है।

• सौर ऊर्जा से अतिरिक्त बिजली बेचकर आय अर्जित की जा सकती है।

• ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर उत्पन्न होते हैं।

पर्यावरणीय लाभ

• सौर ऊर्जा का उपयोग बढ़ने से जीवाश्म ईंधन की आवश्यकता घटती है।

• इससे पर्यावरण में प्रदूषण और कार्बन उत्सर्जन में कमी आती है।

सामाजिक लाभ

• ऊर्जा–निरंतरता से ग्रामीण जीवन स्तर में सुधार।

• विकासशील क्षेत्रों में सकारात्मक आर्थिक परिवर्तन।

क्रियान्वयन और सब्सिडी

• योजना का क्रियान्वयन नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय (एमएनआरई) और राज्य सरकारों तथा अन्य स्थानीय एजेंसियों के सहयोग से किया जाता है।

• सरकार सब्सिडी, बैंक ऋण और अन्य वित्तीय सहायता प्रदान करती है ताकि किसानों का प्रारंभिक निवेश कम हो।

• लाभार्थी को केवल शेष राशि का भुगतान करना होता है, जिससे योजना सुलभ और प्रभावी होती है।

राज्य स्तर पर प्रगति और उदाहरण

राजस्थान जैसे राज्यों ने पीएम–कुसुम योजना के कार्यान्वयन में उल्लेखनीय प्रगति की है, जहाँ योजनान्तर्गत सैकड़ों सौर संयंत्र एवं सोलर पंप स्थापित किए गए हैं। इससे किसानों को दिन के समय निर्बाध बिजली उपलब्ध हो रही है, सिंचाई की सुविधा में सुधार हुआ है तथा डीजल पर होने वाला व्यय कम हुआ है। इसके अतिरिक्त, अतिरिक्त सौर ऊर्जा को ग्रिड से जोड़ने की व्यवस्था के कारण किसानों को अतिरिक्त आय का स्रोत प्राप्त हुआ है। राज्य सरकारों द्वारा सब्सिडी एवं तकनीकी सहायता प्रदान किए जाने से योजना का लाभ छोटे एवं सीमांत किसानों तक भी पहुँच रहा है। परिणामस्वरूप, कृषि उत्पादन में वृद्धि, ग्रामीण रोजगार सृजन तथा पर्यावरण संरक्षण को भी बढ़ावा मिल रहा है।

चुनौतियाँ और सुधार

योजना के कार्यान्वयन में कुछ चुनौतियाँ भी सामने आई हैं जैसे–

• प्रारंभिक तकनीकी ज्ञान का अभाव

• राज्य स्तर पर कार्यान्वयन में भिन्नता

• किसानों तक जागरूकता का सीमित होना

इन समस्याओं को प्रशिक्षण कार्यक्रमों, बेहतर समन्वय और सरल आवेदन प्रक्रियाओं के माध्यम से हल किया जा सकता है।

निष्कर्ष

पीएम–कुसुम योजना एक परिवर्तनकारी योजना है, जो न केवल किसानों को ऊर्जा–आत्मनिर्भर बनाती है, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था, पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान देती है। इस योजना के माध्यम से किसानों की सिंचाई लागत में कमी आती है, डीजल एवं विद्युत पर निर्भरता घटती है तथा अतिरिक्त सौर ऊर्जा को ग्रिड में बेचकर किसानों को अतिरिक्त आय का अवसर प्राप्त होता है।

साथ ही, यह योजना जलवायु परिवर्तन की चुनौती से निपटने में सहायक है, क्योंकि इससे कार्बन उत्सर्जन में कमी आती है और नवीकरणीय ऊर्जा के उपयोग को बढ़ावा मिलता है। ग्रामीण क्षेत्रों में सौर संयंत्रों की स्थापना से रोजगार के नए अवसर सृजित होते हैं, जिससे स्थानीय स्तर पर आर्थिक सशक्तिकरण होता है। इस प्रकार, पीएम–कुसुम योजना भारत को स्वच्छ ऊर्जा भविष्य और आत्मनिर्भर कृषि क्षेत्र की दिशा में सशक्त रूप से अग्रसर कर रही है।

पत्रिका में प्रकाशित आलेख/ विचार लेखकों के अपने हैं।

सोलर कुकर: सौर ऊर्जा का किफायती एवं पर्यावरण संरक्षण में कारगर विकल्प

सुशीला[1] डॉ.सीमा त्यागी[2]

सौर ऊर्जा क्षेत्र की प्रगति हेतु सुझाव

वर्तमान समय में सौर उद्योग सरकार से कुछ आर्थिक राहत की माँग कर रहा है ताकि वे इस वित्तीय संकट से उबर पाएँ और देश के दीर्घकालिक अक्षय ऊर्जा लक्ष्यों को पूरा करने की दिशा में कार्य कर सकें।

सौर ऊर्जा को व्यापक स्तर पर प्रोत्साहित किये जाने के साथ ही सार्वजनिक सहभागिता आधारित वित्त व्यवस्था के जरिये कोष जुटाने हेतु नीति निर्माण किया जाना चाहिये।

सौर ऊर्जा के क्षेत्र में आधुनिक तकनीक के हस्तांतरण एवं रियायती कर्ज व्यवस्था का निर्माण किया जाना चाहिये, जिससे सौर ऊर्जा का उत्पादन तीव्र, सुगम एवं पारदर्शी तरीके से हो सके।सौर ऊर्जा के क्षेत्र में शोध एवं अनुसंधान को बढ़ावा दिया जाना चाहिये।

भारत में 80 प्रतिशत ऊर्जा का उपयोग उद्योग एवं परिवहन क्षेत्र में किया जाता है इसलिये ऊर्जा नीति का निर्माण करते समय इन क्षेत्रों को केंद्र में रखा जाना चाहिये।

ग्रामीण क्षेत्र में सिंचाई और जलापूर्ति के लिये सौर ऊर्जा के उपयोग को प्रोत्साहित किये जाने के साथ ही सुदूर ग्रामीण क्षेत्र में सौर ऊर्जा द्वारा आसानी से तथा उचित मूल्य पर विद्युतीकरण किया जा सकता है।

सौर ऊर्जा क्षेत्र से सम्बंधित महत्त्वपूर्ण बिंदु

वैश्विक ऊर्जा माँग में वर्ष 2040 तक 11 प्रतिशत तक की वृद्धि होने की उम्मीद है, जो वर्ष 2016 में 5 प्रतिशत थी।भारत में ऊर्जा की खपत वर्ष 2035 तक 4.2 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ने की सम्भावना है।

वर्ष 2030 तक गैर जीवाश्म ईंधन स्त्रोतों जैसे, कोयला व तेल पर निर्भरता घटने का अनुमान है। साथ ही, कम मात्रा में कार्बन उत्सर्जित करने वाले स्त्रोत– सौर फोटोवोल्टिक (पी.वी.) के द्वारा बढ़ी हुई ऊर्जा की माँग का 50 प्रतिशत से भी अधिक प्राप्त होने की उम्मीद है।

भारत जलवायु कार्यवाही प्रतिबद्धता के तहत वर्ष 2030 तक गैर–जीवाश्म स्त्रोतों से कुल शक्ति का 40 प्रतिशत तक उत्पादन करने के लिये प्रतिबद्ध है।

सौर सेल के निर्माण के लिये भारत की वार्षिक माँग 20 गीगावॉट की है जबकि भारत की वर्तमान औसत वार्षिक क्षमता केवल 3 गीगावॉट है।

सौर ऊर्जा क्षेत्र के समक्ष चुनौतियाँ

देश में चल रही सौर ऊर्जा परियोजनाओं को लॉकडाउन सम्बंधी नियमों के कारण रोक दिया गया है। साथ ही, सौर ऊर्जा के उत्पादन में प्रयोग किये जाने वाले उपकरणों के आयात में रूकावट के कारण इन परियोजनाओं के क्रियान्वयन में विलम्ब हो रहा है।

भारत सौर ऊर्जा के 80 प्रतिशत उपकरणों के आयात हेतु चीन पर निर्भर है जोकि भारत के लिये आर्थिक और सामरिक दृष्टि से उचित नहीं है।

वर्ष 2019 से 2021 के दौरान कोविड–19 महामारी के समय सौर ऊर्जा क्षेत्र पर गंभीर प्रभाव पड़ा। विभिन्न अध्ययनों एवं रिपोर्टों के अनुसार इस अवधि में सौर ऊर्जा क्षेत्र से जुड़े लगभग 80 से 85 प्रतिशत श्रमिक अस्थायी रूप से प्रभावित हुए। लॉकडाउन, आपूर्ति श्रृंखला में बाधा, परियोजनाओं के स्थगन तथा वित्तीय कठिनाइयों के कारण बड़ी संख्या में श्रमिक अपने मूल स्थानों को लौटने के लिए विवश हुए। परिणामस्वरूप सौर ऊर्जा परियोजनाओं की प्रगति धीमी हो गई, जिससे इस क्षेत्र के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। सौर ऊर्जा उपकरणों (सौर पैनल, इन्वर्टर, वोल्टेज रेगुलेटर आदि) के मूल्य काफी अधिक होते हैं। इसके आलावा बैटरी बदलने या अन्य रख–रखाव का खर्च भी ज्यादा है।

ब) सोलर कुकर

सोलर कुकर एक ऐसा उपकरण है जो सूर्य की किरणों की गर्मी का उपयोग करके भोजन पकाता है।यह एक सरल तकनीक पर आधारित है जिस में धूप को केंद्रित करके बर्तन को गर्म किया जाता है। इसे चलाने केलिए न तो बिजली की जरूरत होती है,नही गैस या लकड़ी की।

सोलर कुकर का उपयोग

सोलर कुकर एक ऐसा उपकरण है जो सूरज की गर्मी का उपयोग कर भोजन पकाता है। यह ईंधन की बचत करता है और घरेलू उपयोग के लिए अत्यंत लाभकारी है। इससे धुआँ नहीं निकलता, जिससे वातावरण स्वच्छ रहता है। भारत के कई हिस्सों में अब सोलर कुकर का प्रचलन तेजी से बढ़ रहा है।

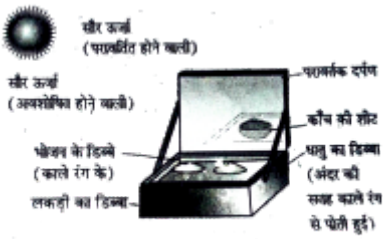

चित्र— सोलर कुकर

- कई गावों में महिलाओं ने (महिला स्वयं सहायता समूह) के माध्यम से सोलर कुकर खरीदे और सामूहिक खाना बनाना शुरू किया।

1 स्नातकोत्तर विद्यार्थी एवं 2 सहायक आचार्य प्रसार शिक्षा एवं संचार प्रबंधन, सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय
स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

- किसान परिवार दिन में खेत पर काम करते समय सोलर कुकर में खाना रखते हैं, जो दोपहर तक तैयार हो जाता है।
- आंगनबाड़ी केंद्रों ने भी बच्चों की खिचड़ी और दाल पकाने में सोलर कुकर का उपयोग शुरू किया है।

सोलर कुकर का ऊर्जा सुरक्षा में योगदान

आज आज के दौर में ऊर्जा की माँग दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। परंपरागत ईंधनों जैसे लकड़ी, गैस, और कोयले पर बढ़ती निर्भरता न केवल पर्यावरण के लिए हानिकारक है, बल्कि इन संसाधनों की सीमित उपलब्धता भी चिंता का विषय है। ऐसे में सोलर कुकर ऊर्जा सुरक्षा की दिशा में एक महत्वपूर्ण विकल्प बनकर उभरा है।

ऊर्जा सुरक्षा में योगदान

1 ईंधन की बचत सोलर कुकर गैस, कोयला या लकड़ी जैसे पारंपरिक ईंधनों की खपत को कम करता है। इससे इन सीमित संसाधनों की बचत होती है।

2. स्वच्छ और निःशुल्क ऊर्जा, सूरज की रोशनी मुफ्त और हर जगह उपलब्ध है। इससे गरीब और दूरदराज के इलाकों रहने वाले लोग भी खाना पका सकते हैं।

३. पर्यावरण संरक्षण यह धुआँ नहीं छोड़ता, जिससे वायु प्रदूषण नहीं होता। यह जलवायु परिवर्तन की समस्या को कम करने में मदद करता है।

4 स्वदेशी तकनीक सोलर कुकर को भारत जैसे देश में आसानी से बनाया और इस्तेमाल किया जा सकता है. जित्तसे आत्मनिर्भरता को बढ़ावा मिलता है।

5. सामाजिक लाभ विशेषकर ग्रामीण महिलाओं के लिए यह एक राहत है, क्योंकि उन्हें लकड़ी बीनने की जरूरत नहीं पड़ती, जिससे उनका समय और श्रम बचता है।

☑ सोलर कुकर के लाभ

1. धूप में खाना पकाना

सोलर कुकर को धूप वाली जगह पर रखा जाता है। इसकी काँच की प्लेट और अंदर की काली परत धूप को सोख लेती है, जिससे अंदर तापमान बढ़ता है और खाना आसानी से पक जाता है। चावल दाल सब्जी खिचड़ी सूखे पापड़ पूरी बहुत आसानी से बन जाते हैं।

2. लकड़ी और गैस की बचत

गाँव में रोज लकड़ी इकट्ठी करने की दिक्कत रहती है। सोलर कुकर से 20–40 प्रतिशत तक ईंधन की बचत होती है। इससे महिलाओं का समय भी बचता है और जंगलों पर दबाव कम होता है।

3. धुआँ नहीं स्वास्थ्य सुरक्षित

चूल्हे के धुएँ से आँखों, फेफड़ों और सिर में दर्द की समस्या रहती है। सोलर कुकर धुआँ नहीं करता, इसलिए यह महिलाओं और बच्चों के स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित है।

4. आग का खतरा नहीं

गैस या चूल्हे की तरह इसमें आग नहीं लगती, इसलिए यह घर और बच्चों दोनों के लिए सुरक्षित है।

ग्रामीण सुरक्षा में सोलर कुकर का योगदान

आग लगने की घटनाओं में कमी

1. मिट्टी के चूल्हे या गैस सिलिंडर की वजह से आग लगने की घटनाएँ होती हैं, खासकर कच्चे घरों में। सोलर कूकर इस जोखिम को कम करता है।

2. बच्चे और बुजुर्ग सुरक्षित

3.आग न होने से बच्चे खेलते समय जलने की घटनाओं से बच जाते हैं।

पर्यावरण सुरक्षा

लकड़ियों का कम प्रयोग होने से जंगल बचते हैं, हवा साफ रहती है और प्रदूषण भी घटता है।

सोलर कुकर कहाँ से प्राप्त करें ?

ऑनलाइन मार्केट में

सोलर कुकर ऑनलाइन बाजार में ¼https;\\www.tradeindia.com,https;\\agnisolar.com,https;//orgabox.com) उपलब्ध हैं और उनकी कीमत लगभग ₹3500 से ₹5000 तक होती हैं।

स्थानीय शहर में

कुछ शहरों में स्थानीय दुकानों पर भी यह उपलब्ध हैं जहाँ सोलर लैंप, सोलर पैनल उपलब्ध होते हैं।

आगे की राह..

देश की ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने हेतु न केवल बुनयादी ढ़ाँचे को मजबूत करने की आवश्यकता है, बल्कि ऊर्जा के नए तथा वैकल्पिक स्त्रोतों की खोज भी जरूरी है। सौर ऊर्जा क्षेत्र भारत के ऊर्जा उत्पादन और माँग के बीच की असमानता को काफी हद तक कम कर सकता है।

निष्कर्ष

सौर ऊर्जा एक स्वच्छ, नवीकरणीय और पर्यावरण के अनुकूल ऊर्जा स्रोत है। यह न केवल हमारे बिजली खर्च को कम करती है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अगर हम सौर ऊर्जा का अधिकतम उपयोग करें, तो हम भविष्य में एक हरित और टिकाऊ जीवन की ओर अग्रसर हो सकते हैं।

अब आपके घर तक बिजली कैसे पहुती है और कैसे इंडिया में बिजली बनाया जा रहा है. इसलिए अपने घरो में जो भी उपकरण चला रहें है उसको जरूत के अनुसार चलाये अन्यथा आने वाले समय में नेचुरल रिसोर्स धीरे – धीरे खत्म होते चला जायेगाआज से आप भी अपने घरों में पूरी बिजली का कम से कम 30 प्रतिशत बिजली खुद से बनाकर प्रयोग करें. इसके लिए अपने घर 300 वाट से 1000 वाट तक का सोलर पैनल लगाके अपने घर बिजली बना सकते है।

भारतीय कृषि में कार्बन खेती: वर्तमान स्थिति और भविष्य

हर्षदीप सिंह, डॉ. दाताराम कुम्हार, डॉ. अशोक कुमार, डॉ. ए. एल. यादव

भूमिका

बदलते वैश्विक परिवेश में जलवायु परिवर्तन एक गंभीर चुनौती बन चुका है। बढते तापमान, अनियमित वर्षा, सूखा, बाढ तूफान जैसी विपत्तियाँ कृषि उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डाल रही हैं। ऐसे समय में कृषि क्षेत्र से ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन कम करना और कृषि भूमि को कार्बन अवशोषण का महत्वपूर्ण माध्यम बनाना अत्यंत आवश्यक हो गया है। इसी दिशा में कार्बन खेती एक नई, उभरती और लाभकारी अवधारणा के रूप में सामने आई है, जो किसानों को अतिरिक्त आय के अवसर भी प्रदान करती है।

कार्बन खेती क्या है?

कार्बन खेती वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से किसान कृषि भूमि में कार्बन को अवशोषित और सुरक्षित रखने वाली गतिविधियाँ अपनाते हैं। मिट्टी में कार्बन का संचयन बढाकर वायुमंडल में उपस्थित हानिकारक गैसों की मात्रा को कम किया जाता है। इसके फलस्वरूप किसानों को कार्बन क्रेडिट के रूप में आर्थिक लाभ मिलता है।

यह प्रणाली भूमि, पानी, पौधों और वातावरण को संतुलित करके जलवायु परिवर्तन को धीमा करने में भी मदद करती है।

कार्बन खेती की आवश्यकता

1. जलवायु परिवर्तन से कृषि उत्पादकता में गिरावट रोकना,
2. मिट्टी की उर्वरता और क्षमता में सुधार,
3. रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम करना,
4. पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रण,
5. किसानों को अतिरिक्त आय के रास्ते मुहैया कराना।

कृषि क्षेत्र में अपनाई जा सकने वाली अनेक गतिविधियाँ कार्बन भंडारण बढाने में सहायक होती हैं। इससे न केवल पर्यावरण सुरक्षित होता है बल्कि दीर्घकाल में खेत की दशा भी बेहतर होती है।

कार्बन खेती की प्रमुख तकनीकें

1. संरक्षण कृषि

- न्यूनतम जुताई,
- फसल अवशेषों को जलाने की बजाय खेत में ही छोड़ना,
- फसल चक्र अपनाना,
- इससे मिट्टी में जैविक कार्बन का स्तर बढता है और कटाव कम होता है।

2. जैविक खेती

- रासायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों का कम प्रयोग,
- गोबर खाद, कम्पोस्ट, जैव उर्वरकों का उपयोग,
- मिट्टी की जैविक सामग्री में वृद्धि ।

3. वृक्ष आधारित खेती

- खेतों की मेड़ों पर पेड़ लगाना,
- कृषि वानिकी अपनाना,
- वृक्ष कार्बन अवशोषण के सबसे प्रभावी स्रोत माने जाते हैं।

4. फसल अवशेष प्रबंधन

- पराली न जलाकर उसका कम्पोस्ट बनाना,
- अवशेषों का मल्च के रूप में उपयोग,
- मिट्टी में कार्बन संचयन में सीधा योगदान।

5. चराई प्रबंधन

- चराई के लिए निर्धारित क्षेत्र का संतुलित उपयोग,
- घास उत्पादन बढाने वाले उपाय ,
- इससे मिट्टी में कार्बन संरक्षित रहता है।

6. पानी प्रबंधन

- सूक्ष्म सिंचाई तकनीक,
- खेत में नमी संरक्षण,
- गहरी जुताई से बचाव,
- इससे कार्बन उत्सर्जन कम होता है।

कार्बन क्रेडिट क्या है और किसान को इससे लाभ कैसे मिलता है?

जब किसान ऐसी कृषि तकनीकें अपनाते हैं जो वायुमंडल में कार्बन की मात्रा को कम करती हैं, तो इससे एक निश्चित मात्रा में कार्बन क्रेडिट उत्पन्न होता है।

इन क्रेडिटों को विभिन्न उद्योग, कंपनियाँ तथा संस्थाएँ खरीदती हैं ताकि वे अपने उत्सर्जन की भरपाई कर सकें।

किसान इन कार्बन क्रेडिटों को बेचकर अतिरिक्त आय प्राप्त कर सकते हैं तथा इस से आय प्रतिवर्ष प्राप्त हो सकती है और खेत में किए जा रहे पर्यावरण–अनुकूल कार्यों का मूल्यांकन भी बढाती है।

किसानों के लिए लाभ

1. **अतिरिक्त आय का स्रोत–** कार्बन क्रेडिट बेचकर किसानों को प्रतिवर्ष आर्थिक लाभ मिलता है।
2. **मिट्टी की उर्वरता में सुधार–** जैविक कार्बन बढने से खेत की उत्पादकता स्थायी रूप से बढ़ती है।
3. **रासायनिक लागत में कमी–** कम उर्वरक और कम कीटनाशक उपयोग से खेती की लागत घटती है।
4. **जलवायु–स्मार्ट कृषि को बढावा–** किसान जलवायु परिवर्तन से बचाव के उपाय सीखते हैं।
5. **दीर्घकाल में अधिक उपज–** स्वस्थ मिट्टी और स्थिर जल प्रबंधन से उपज में सुधार होता है।

कार्बन खेती में कार्बन का मापन कैसे किया जाता है?

कार्बन खेती की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि खेत में कितनी मात्रा में कार्बन अवशोषित और संग्रहीत हुआ है। इसका मापन निम्न तरीकों से किया जाता है–

1. **मिट्टी नमूना विश्लेषण:** खेत की अलग–अलग गहराई से मिट्टी लिए जाने पर उसमें जैविक कार्बन की मात्रा मापी जाती है।
2. **पौधों द्वारा कार्बन अवशोषण का अनुमान:** पेड़, फसलें और घास कितनी मात्रा में कार्बन रोक पा रहे हैं, इसका आकलन वैज्ञानिक मॉडल से किया जाता है।

1 स्नातकोत्तर विद्यार्थी एवं 2 सहायक आचार्य, प्रसार शिक्षा एवं संचार प्रबंधन, सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय
स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

3. **डिजिटल निगरानी प्रणाली:** खेत में सेंसर, उपग्रह चित्र और मोबाइल आधारित तकनीकों से कार्बन की स्थिति को लगातार मॉनिटर किया जाता है।

4. **कार्बन क्रेडिट मूल्यांकन पद्धति:** प्रमाणित संस्थाएँ किसानों की गतिविधियों, कृषिगत प्रबंधन और उत्सर्जन घटाने की क्षमता का मूल्यांकन कर कार्बन क्रेडिट जारी करती हैं।

भारत में कार्बन खेती से संभावित आय

भारत में कार्बन खेती अभी तेजी से बढ रहा है, लेकिन अनुमान के अनुसार

- एक किसान प्रति वर्ष 10,000 से 25,000 रुपये सिर्फ कार्बन क्रेडिट से कमा सकता है।
- कृषि वानिकी एवं वृक्ष आधारित खेती करने वाले किसान इससे भी अधिक कमा सकते हैं।
- बड़े क्षेत्र वाले किसान समूह बनाकर सामूहिक कार्बन क्रेडिट बिक्री कर सकते हैं।

जीरो–टिलेज, मलचिंग, जैविक खाद का उपयोग, पराली प्रबंधन आदि अपनाने वाले किसानों को इससे जल्दी लाभ मिलता है।

कार्बन खेती के सामाजिक लाभ

1. **ग्रामीण रोजगार में वृद्धि–** किसानों को प्रशिक्षण, निगरानी, कार्बन मापन जैसे कार्यों में स्थानीय युवाओं को रोजगार मिलता है।
2. **प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण–** भूमि, जल और जैव विविधता का संरक्षण बढता है।
3. **फसल जोखिम में कमी–** मिट्टी की स्वस्थ स्थिति और जल संरक्षण से सूखे और बाढ का प्रभाव कम होता है।

पराली प्रबंधन और कार्बन खेती

पराली जलाने से पर्यावरण में भारी मात्रा में कार्बन डाइऑक्साइड, धुआँ और विषाक्त गैसें फैलती हैं।

कार्बन खेती के तहत पराली प्रबंधन के उपाय

- पराली को कम्पोस्ट बनाने में उपयोग,
- मल्च के रूप में खेत में छोड़ना,
- मशरूम उत्पादन हेतु प्रयोग,
- जैव–ईंधन व पशु चारा के रूप में उपयोग।

इन उपायों से न केवल वायु प्रदूषण घटता है बल्कि मिट्टी में कार्बन संचयन भी बढता है।

कृषि वानिकी: कार्बन खेती का सबसे प्रभावी रूप

कृषि वानिकी में किसान खेतों में फसलों के साथ पेड़ लगाता है। यह प्रणाली कार्बन अवशोषण की सबसे शक्तिशाली तकनीक मानी गई है।

इसके लाभ

- पेड़ लगातार कार्बन अवशोषित करते हैं,
- लकड़ी, फल, पत्ते और चारा से अतिरिक्त आय,
- छाया और नमी संरक्षण से फसल उत्पादन में सुधार,
- मिट्टी की संरचना मजबूत होती है।

वृक्ष जैसे नीम, करंज, शीशम, बबूल, सफेदा, अर्जुन और फलदार पेड़ इस हेतु उपयुक्त हैं।

कार्बन खेती से मिट्टी की सेहत में सुधार

मिट्टी में जैविक कार्बन बढने से–

- मिट्टी की जल धारण क्षमता बढती है,
- सूक्ष्मजीवों की गतिविधियाँ बढ़ती हैं,
- मिट्टी का तापमान संतुलित रहता है,
- पोषक तत्वों की उपलब्धता सुधरती है,
- कटाव में कमी आती है।

यह सुधार फसल उत्पादन के लिए दीर्घकालिक लाभकारी है।

कार्बन खेती अपनाने में किसानों को किन संस्थाओं से मदद मिलती है?

कई राष्ट्रीय और स्थानीय संगठन किसानों को कार्बन खेती अपनाने में सहायता देते हैं–

- कृषि विज्ञान केंद्र,
- राज्य कृषि विश्वविद्यालय,
- कृषि विभाग,
- प्राकृतिक खेती एवं जैविक खेती मिशन,
- कार्बन क्रेडिट प्रमाणन संस्थाएँ,
- निजी कृषि–विस्तार संस्थाएँ ।

ये संस्थाएँ किसानों को प्रशिक्षण, तकनीकी मार्गदर्शन, कार्बन मापन तथा प्रमाणन प्रक्रिया में सहयोग प्रदान करती हैं।

भविष्य में कार्बन खेती की भूमिका

आने वाले वर्षों में कार्बन खेती कृषि दिशा को बदल सकती है, क्योंकि

- पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता बढ रही है।
- जैव विविधता और मिट्टी संरक्षण सवोपरि है।
- सरकार टिकाऊ कृषि की ओर तेजी से बढ रही है।
- निजी कंपनियाँ कार्बन क्रेडिट खरीदने को तैयार हैं।

इससे किसानों की आय और पर्यावरण दोनों सुरक्षित होंगे।

भारत में कार्बन खेती की संभावनाएँ

भारत में कृषि भूमि व्यापक है, इसलिए यहाँ कार्बन संग्रहण की अपार क्षमता मौजूद है। कई राज्यों में संरक्षण कृषि, जैविक खेती, कृषि वानिकी और प्राकृतिक खेती जैसी प्रणालियाँ बढ रही हैं, जिनसे कार्बन खेती की संभावनाएँ भी बढी हैं।

सरकारी योजनाओं, निजी संस्थाओं और अंतरराष्ट्रीय संगठनों द्वारा किसानों को मार्गदर्शन, प्रशिक्षण और बाजार उपलब्ध कराया जा रहा है। भविष्य में कार्बन खेती भारत के कृषि क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकती है।

चुनौतियाँ

1. किसानों में जागरूकता की कमी,
2. कार्बन क्रेडिट बाजार की जटिल प्रक्रिया,
3. प्रमाणन एवं मापन की तकनीकी कठिनाइयाँ,
4. वैज्ञानिक प्रशिक्षण का अभाव।

इन चुनौतियों के बावजूद भारत के किसान तेजी से कार्बन खेती की ओर बढ रहे हैं।

निष्कर्ष

कार्बन खेती न केवल किसानों को अतिरिक्त आय प्रदान करती है, बल्कि पर्यावरण संरक्षण, जलवायु परिवर्तन नियंत्रण और मिट्टी स्वास्थ्य सुधार का एक प्रभावी माध्यम भी है। भविष्य में यह प्रणाली कृषि को टिकाऊ, लाभकारी और जलवायु–स्मार्ट बनाने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी। भारत के किसानों के लिए यह एक नई, सुरक्षित और स्थायी आय का द्वार है।

किसानों के लिए बकरियों में प्रजनन व नस्ल सुधार का महत्त्व

संजय[1], डॉ. कुलदिप प्रकाश शिंदे और डॉ. शंकर लाल[2], डॉ. निर्मल सिंह दहिया[3]

बकरी एक पालतू स्तनधारी पशु है जो बोविडे कुल के काप्रा वंश से संबंधित है। इसका पालतुकरण लगभग 10,000 वर्ष पूर्व जंगली बेजोआर आइबेक्स से हुआ था यह शाकाहारी जुगाली करने वाला पशु विभिन्न जलवायु में अनुकूलित होता है और दूध, मांस, ऊन व चमड़े के लिए पाला जाता है। राजस्थान देश का सबसे बड़ा राज्य जो अपनी शुष्क जलवायु और रेगिस्तानी भूभाग के लिए जाना जाता है यहां कृषि और पशुपालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था की आधारशिला है लेकिन बदलते मौसम, पानी की कमी और फसल की अनिश्चितता के कारण पारंपरिक खेती चुनौतीपूर्ण हो गई है ऐसे में बकरी पालन एक उभरता हुआ क्षेत्र बनकर सामने आ रहा है राजस्थान में बकरियों की कुल संख्या 20वीं पशुगणना 2019 के अनुसार लगभग 20.84 मिलियन है, जिसके कारण राज्य भारत में बकरी पालन के मामले में प्रथम स्थान पर है और देश की कुल बकरियों का करीब 14 प्रतिशत हिस्सा यहां है।

बकरियों में प्रजनन एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जो बकरी पालन के लाभ को बढ़ाती है, क्योंकि ये जुड़वाँ या अधिक बच्चे देने में सक्षम होती हैं। मादा बकरी आमतौर पर 8–12 महीने की उम्र में यौवन अवस्था में पहुँचकर गर्मी (मदकाल) में आती है, जबकि नर बकरा 4–6 महीने में परिपक्व होता है। मद चक्र 18–21 दिनों का होता है और गर्मी की अवधि 24–72 घंटे तक रहती है, जिसमें बकरी बेचौन होकर मिमियाती है, पूंछ उठाती है भारत में बकरियाँ मौसमी प्रजनक होती हैं और मुख्य प्रजनन मौसम अगस्त से जनवरी तक रहता है, जब छोटे दिन प्रजनन को प्रोत्साहित करते हैं। गर्भावस्था की अवधि लगभग 150 दिन (5 महीने) होती है और एक ब्यात में 1–4 बच्चे जन्म लेते हैं। प्रजनन प्रबंधन के लिए एक स्वस्थ नर बकरे को 20–25 मादाओं के साथ रखा जा सकता है, तथा प्रजनन मौसम में अतिरिक्त पोषण (फ्लशिंग) देकर गर्भ ठहरने की दर बढ़ाई जा सकती है।

बकरी के गर्मी या हिट में आने के लक्षण

बकरी सुस्त, बेचैन रहती है, पूंछ उठाकर विशेष प्रकार की आवाज करती है, खाना–पीना कम कर देती है अचानक दूध में कमी आ जाती है। दूसरी बकरियों पर चढ़ने की कोशिश करती है योनि द्वार गुलाबी तथा सूजा लगता है। बकरा गर्मी के लक्षणों वाली बकरी की पहचान जल्दी कर लेता है।

बकरियों में प्रजनन व नस्ल सुधार करते समय ध्यान रखने योग्य बिंदु

1. जलवायु के अनुरूप हि उपयुक्त नस्ल का चुनाव करे
2. बकरियों में नियंत्रित गर्भधारण करनी चाहिये। उसके लिये नर और मादा को अलग–अलग रखें।
3. हर सुबह बकरियों के झुंड में बकरा छोड़े और जो बकरी गर्मी में हो उसे अलग कर के बकरा लगायें। प्रतिदिन एक बकरे से दो से तीन बकरियां लगवाये।
4. बकरा लगाने के बाद नियमित रूप से बकरी गाभिन है या नहीं

1.स्नातकोत्तर उत्तीर्ण छात्र, 2.सहायक प्राध्यापक (एल.पी.एम.) पशुधन उत्पादन और प्रबंधन विभाग
स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर 3. प्रसार शिक्षा निदेशक बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय पटना मोबाइल नंबर 9785512724 ईमेल ngc.sanjay2000@gmail.com

इसकी जांच करें।

5. गाभिन बकरी को 300 ग्राम प्रतिदिन के हिसाब से दाना (फ्लशिंग) खिलाये। ये दाना बाजार में मिलता है। उससे बच्चे स्वस्थ और सुदृढ़ होते है।

6. जब तक बकरे का इस्तेमाल प्रजनन के लिये होता है। जब तक उसे प्रतिदिन 300 ग्राम दाना खिलायें।

7. हर तीसरे साल प्रजनन के लिये प्रयोग किया गया बकरा बदलें।

8. प्रसव पश्चात दो माह के अंदर बकरी गर्मी पर आ जाती है। इसकी नियमित रूप से जांच करें।

9. जिन बकरियों का वजन कम हो ऐसी बकरियों को गाभिन न करवायें।

10. एक बकरे से 45–50 बकरियों का रेतन करना उचित होता है, इसी अनुपात में बकरा–बकरी रखें।

11. बकरी डेढ़ वर्ष में दो बार बच्चे देती है।

12. प्रजनन योग्य क्षमता की आयु बकरियों में 12 माह तथा बकरों में 1–2 वर्ष होती है। पर बकरी व मेमनों की स्वास्थ्य की दृष्टि से बकरी को 15 माह के पहले गर्भधारण नहीं करवाना चाहिए।

13. बकरियों के लिए गर्भावस्था का समय अप्रैल–जून एवं सितम्बर–नवम्बर उचित माना जाता है। किन्तु पौष्टिक आहार देने पर बकरी वर्ष भर गर्मी में आती रहती है।

14. नियमित ऋतु काल 18–21 दिन का होता है। ऋतुकाल में ताव में लक्षण कुछ घंटे से लेकर 2–3 दिन तक दिखाई देते हे।

15. फलदायी समागम समय 6–20 घंटे तक ही होता है।

बकरियों का पोषण प्रबंधन

बकरियों के चरने एवं खान–पान का व्यवहार अन्य पशुओं की तुलना में अति विशिष्ट होती है। मुख की विशिष्टता बनावट उसे कांटेदार पत्तियां चरने में मदद करती है। बकरियां खाने में बड़ी नखरेवाली होती है। जो चारा एक बकरी को पसंद है वह दूसरी को नापसंद हो सकता है। पैरों द्वारा रौंदा गया मिट्टी लगा चारा खाने के बजाए वे भूखी रहना पसंद करती है। अन्य पशुओं के विपरित बकरियां कम नमी युक्त चारे पर आश्रित रहना पसंद करती है। बकरियों का खान–पान धीरे–धीरे बदलना चाहिए। अधिक दुध व मांस उत्पादन हेतु दुधारू गाभिन बच्चे तथा प्रजनन के काम आने वाले बकरों आदि को उनके वजन व उत्पादन के अुनसार संतुलित दाना–चारा तथा अन्य पोषक तत्व के साथ उचित मात्रा मे खनिज लवण नियमित रूप से देना चाहिए।

बकरी पालन के लाभ

गाय–भैंस के मुकाबले बकरी को खरीदना सस्ता होता है और इसे पालने के लिए ज्यादा चारे या खास व्यवस्था की जरूरत नहीं होती यह झाड़ियों पेड़ पौधों की पतियों को भी खा लेती है राजस्थान के किसान साथी बकरी से दुग्ध मांस एवं बाल तीनों चीजें प्राप्त करते है। इसका दूध पौष्टिक होता है और खासकर बच्चों और बीमार लोगों के लिए फायदेमंद माना जाता है। बकरी का दूध सुपाच्य (डाइजेस्टिबल) होता है और इसमें रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाले गुण होते हैं, जो इसे स्वास्थ्य के लिए भी उत्तम बनाते हैं।

चना की फसल में लगने वाले प्रमुख रोग कारक, लक्षण एवं नियंत्रण उपाय

सुनील कुमार शर्मा, डॉ. जसवीर सिंह, डॉ. बी.डी.एस. नाथावत

भूमिका:

चना भारत की एक प्रमुख दलहनी फसल है, जो देश की कृषि अर्थव्यवस्था और पोषण सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। चना प्रोटीन का एक सस्ता और उत्तम स्रोत है, इसलिए इसका उपयोग दाल, बेसन, सब्जी एवं पशु आहार के रूप में व्यापक रूप से किया जाता है। भारत विश्व में चने का सबसे बड़ा उत्पादक देश है। इसके बावजूद चना की फसल विभिन्न प्रकार के रोगों से प्रभावित होती है, जिससे उत्पादन एवं गुणवत्ता दोनों में भारी कमी आ जाती है। ये रोग फफूंद, जीवाणु, विषाणु एवं सूत्रकृमि द्वारा उत्पन्न होते हैं। यदि समय रहते इन रोगों की पहचान एवं उचित नियंत्रण न किया जाए, तो किसानों को भारी आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है।

इस लेख में चना की फसल में लगने वाले प्रमुख रोगों, उनके कारणों, लक्षणों तथा नियंत्रण उपायों का विस्तार से वर्णन किया गया है।

1. उकठा रोग-

रोग कारक- फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम प्रजाति सिसेरी

रोग के लक्षण-

यह चना का सबसे विनाशकारी रोग माना जाता है। यह रोग पौधे की किसी भी अवस्था में दिखाई दे सकता है। प्रारंभ में पौधों की पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं और धीरे–धीरे पूरा पौधा मुरझा जाता है। जड़ और तने को चीरने पर अंदर की नलिकाएँ भूरे या काले रंग की दिखाई देती हैं। प्रभावित पौधे अंततः सूखकर मर जाते हैं।

रोग फैलने का कारण-

- ❖ हल्की दोमट मिट्टी
- ❖ अधिक तापमान (25-30°C)
- ❖ लगातार चना की खेती
- ❖ संक्रमित बीज एवं मिट्टी

नियंत्रण उपाय-

- ❖ रोगरोधी किस्मों का चयन (जैसे- जे.जी.–62, पूसा–372)
- ❖ बीजोउपचार कार्बेन्डाजिम 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज
- ❖ फसल चक्र अपनाना
- ❖ ट्राइकोडर्मा जैसे जैव–नियंत्रक का प्रयोग

2. जड़ सड़न रोग-

रोग कारक- राइजोक्टोनिया बैटाटिकोला

रोग के लक्षण-

इस रोग में पौधे की जड़ें सड़ने लगती हैं, जिससे पौधा कमजोर होकर गिर जाता है। तने का निचला भाग काला पड़ जाता है और पौधा अचानक सूख जाता है। यह रोग प्रायः फूल आने की अवस्था में अधिक देखा जाता है।

रोग फैलने का कारण-

- ❖ सूखा एवं गर्म मौसम
- ❖ कम नमी वाली मिट्टी
- ❖ हल्की मिट्टी

नियंत्रण उपाय-

- ❖ गहरी जुताई
- ❖ संतुलित सिंचाई
- ❖ बीजोपचार (थाइरम या कार्बेन्डाजिम)
- ❖ जैविक खाद का प्रयोग

3. झुलसा रोग-

रोग कारक- एस्कोचाइटा रैबीआई

रोग के लक्षण-

इस रोग में पत्तियों, तनों और फलियों पर भूरे रंग के गोल धब्बे बनते हैं। धब्बों के बीच में काले बिंदु दिखाई देते हैं। अधिक प्रकोप होने पर पूरी फसल नष्ट हो सकती है।

रोग फैलने का कारण-

- ❖ ठंडा एवं नम मौसम
- ❖ लगातार वर्षा
- ❖ संक्रमित बीज

नियंत्रण उपाय-

- ❖ प्रमाणित एवं स्वस्थ बीज का प्रयोग
- ❖ फसल अवशेषों को नष्ट करना
- ❖ मैंकोजेब का छिड़काव

4. चूर्णी फफूंदी-

रोग कारक- एरिसाइफे पॉलीगोनी

रोग के लक्षण-

पत्तियों, तनों और फलियों पर सफेद चूर्ण जैसा पदार्थ जम जाता है। इससे प्रकाश संश्लेषण प्रभावित होता है और पौधे की वृद्धि रुक जाती है।

रोग फैलने का कारण-

- ❖ ठंडा एवं शुष्क मौसम
- ❖ देर से बोई गई फसल

नियंत्रण उपाय-

- ❖ सल्फर युक्त दवाओं का छिड़काव
- ❖ रोगग्रस्त पौधों को हटाना
- ❖ संतुलित उर्वरक प्रयोग

5. मोजेक रोग (वायरल रोग)-

रोग कारक – वायरस, जो एफिड द्वारा फैलता है

रोग के लक्षण-

पत्तियों पर पीले और हरे रंग का चितकबरा पैटर्न दिखाई देता है। पौधा बौना रह जाता है और फूल–फल कम लगते हैं।

नियंत्रण उपाय-

- ❖ रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर नष्ट करना
- ❖ कीट नियंत्रण (एफिड नियंत्रण)
- ❖ रोगरोधी किस्मों का चयन

6. बैक्टीरियल ब्लाइट (जीवाणु जनित रोग)-

रोग कारक- जैंथोमोनास कैंपेस्ट्रिस

लक्षण-

पत्तियों पर जल–सिक्त धब्बे बनते हैं, जो बाद में भूरे हो जाते हैं। यह रोग अधिक नमी में तेजी से फैलता है।

नियंत्रण-

- ❖ बीजोपचार
- ❖ कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का छिड़काव
- ❖ खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था

7. सूत्रकृमि रोग-

रोग कारक- मेलॉयडोजीन इन्कॉग्निटा

लक्षण-

जड़ों पर गांठें बन जाती हैं, पौधा कमजोर हो जाता है और उत्पादन घट जाता है।

नियंत्रण-

- ❖ गहरी जुताई
- ❖ नीम खली का प्रयोग
- ❖ फसल चक्र अपनाना

रोग प्रबंधन में समन्वित दृष्टिकोण-

चना के रोगों से प्रभावी नियंत्रण के लिए समन्वित रोग प्रबंधन आवश्यक है, जिसमें निम्न उपाय शामिल हैं

- ❖ स्वस्थ बीज का प्रयोग
- ❖ फसल चक्र
- ❖ जैविक एवं रासायनिक नियंत्रण का संतुलित उपयोग
- ❖ खेत की स्वच्छता

निष्कर्ष:

चना की फसल में लगने वाले रोग किसानों के लिए एक गंभीर समस्या हैं। यदि किसान समय पर रोगों की पहचान कर वैज्ञानिक विधियों से उनका नियंत्रण करें, तो उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है। रोगरोधी किस्मों का चयन, बीजोपचार, फसल चक्र एवं जैविक नियंत्रण अपनाकर चना की खेती को अधिक लाभकारी बनाया जा सकता है। इस प्रकार समुचित रोग प्रबंधन द्वारा न केवल किसान की आय बढ़ाई जा सकती है, बल्कि देश की दलहन उत्पादन क्षमता को भी मजबूत किया जा सकता है।

लेखक अपने आलेख

dee@raubikaner.org /
rajeshvermasct@gmail.com

पर हिन्दी फोन्ट कृतिदेव 10 में वर्ड फाईल व पीडीएफ दोनों में भिजवाने का श्रम करें।

शुष्क क्षेत्रों में उपयुक्त वन वृक्षों की प्रजनन रणनीतियाँ

योगेश खोखर, राकेश पारासरिया , डॉ संदीप कुमार बागड़वा

परिचय

शुष्क क्षेत्र वे क्षेत्र होते हैं जहाँ वार्षिक वर्षा बहुत कम होती है (500 मिमी से भी कम), तापमान अधिक रहता है।और मिट्टी में जलधारण क्षमता कम होती है। भारत में राजस्थान, गुजरात, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश के कुछ भाग, और तमिलनाडु के शुष्क क्षेत्र इस श्रेणी में आते हैं। इन क्षेत्रों में वनावरण को बनाए रखना एक बड़ी चुनौती है। लेकिन यदि उपयुक्त वृक्ष प्रजातियों और वैज्ञानिक प्रजनन तकनीकों का प्रयोग किया जाए, तो टिकाऊ वन विकास संभव है।

शुष्क क्षेत्रों की प्रमुख समस्याएँ

कम वर्षा और अनियमित जल आपूर्ति

शुष्क क्षेत्रों को ऐसे भौगोलिक क्षेत्र कहा जाता है। जहाँ वार्षिक वर्षा की मात्रा अत्यंत कम होती है। (सामान्यत 250 मिमी से 500 मिमी तक) तथा वर्षा की आवृत्ति अनियमित होती है। इन क्षेत्रों में जल स्रोत सीमित होते हैं। और जल आपूर्ति स्थिर नहीं रहती। इस कारण कृषि, पेयजल, तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति मुख्यत वर्षा पर निर्भर रहती है।

मिट्टी की अपरदनः शुष्क क्षेत्रों में वनस्पति आवरण की कमी, तेज हवाएँ, तथा असंगठित वर्षा के कारण मिट्टी का तेजी से कटाव होता है। इससे भूमि की ऊपरी उपजाऊ परत नष्ट हो जाती है और भूमि बंजर बनने लगती है।

उच्च तापमान रू शुष्क क्षेत्रों में दिन का तापमान अत्यधिक होता है।जो गर्मियों में अक्सर 45°C से ऊपर पहुँच जाता है। यह तापमान न केवल फसलों की वृद्धि को प्रभावित करता है। बल्कि मिट्टी की नमी को भी तेजी से समाप्त कर देता है।

जैव विविधता में कमी रू शुष्क क्षेत्रों में सीमित जल, उच्च ताप मान, मृदा की निम्न उर्वरता और मानवीय गतिविधियों (जैसे अति–चराई, वनों की कटाई, और भूमि का अत्यधिक दोहन) के कारण वनस्पति और जीव–जंतुओं की अनेक प्रजातियाँ समाप्त हो रही हैं। इससे इन क्षेत्रों की पारिस्थितिक संतुलन प्रभावित होता है।

पशु चराई और मानव हस्तक्षेप : शुष्क क्षेत्रों में चारे की कमी के कारण सीमित चरागाहों पर अत्यधिक संख्या में पशुओं को चराया जाता है। इससे भूमि का पौध आवरण नष्ट हो जाता है। मिट्टी ढीली होकर तेजी से कटने लगती है। और मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया तेज हो जाती है। जनसंख्या वृद्धि, अव्यवस्थित कृषि विस्तार, वनों की अंधाधुंध कटाई, और जल स्रोतों के अत्यधिक दोहन जैसे मानवीय क्रियाकलाप शुष्क क्षेत्रों के प्राकृतिक संसाधनों पर भारी दबाव डालते हैं। यह पारिस्थितिक असंतुलन और जैव विविधता में गिरावट का कारण बनता है।

शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त वृक्ष प्रजातियाँ

शुष्क क्षेत्रों में जिन वृक्षों का चयन किया जाता है। वे उच्च ताप और जल अभाव को सहन करने वाले होने चाहिए। कुछ उपयुक्त वृक्ष प्रजातियाँ इस प्रकार हैंरू

प्रोसोपिस सिनेरेरिया (खेजड़ी) रू खेजड़ी एक बहुवर्षीय, गहरे जड़ प्रणाली वाला वृक्ष है। जो मुख्यत राजस्थान, गुजरात, पंजाब, और हरियाणा जैसे शुष्क व अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में पाया जाता है। यह मरुस्थलीय पारिस्थितिक तंत्र का एक प्रमुख और उपयोगी वृक्ष है।

खेजड़ी की विशेषताएँः सूखा सहनशीलतारू अत्यल्प वर्षा (200–400 मिमी) में भी जीवित रहता है। इसकी पत्तियाँ गिरकर मृदा में जैविक पदार्थ और नाइट्रोजन बढ़ाती हैं। बहुउपयोगी जैसे चारा (लुंग), लकड़ी, छाया, हरी खाद, और फली (सांगरी)

एकैशिया निलोटिका (बाबुल) : बाबुल एक मजबूत और सूखा प्रतिरोधी वृक्ष प्रजाति है। जो भारत के शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में व्यापक रूप से पाया जाता है। यह वृक्ष कठोर परिस्थितियों में भी जीवित रह सकता है और विभिन्न प्रकार की भूमियों में उगाया जा सकता है।

बाबुल की प्रमुख विशेषताएँ : उत्कृष्ट सूखा सहनशीलताः 250–750 मिमी वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी तरह बढ़ता है। गहरी जड़ प्रणाली मिट्टी में गहराई तक जाकर नमी खींच सकता है। भूमि अपरदन रोकने में सहायक होता है।

टेर्मिनेलिया अर्जुना (अर्जुन) : अर्जुन एक मध्यम आकार का बहुउपयोगी वृक्ष है। जो शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त माना जाता है। यह विशेष रूप से अपनी औषधीय महत्ता और मृदा

विद्यावाचस्पति शोधार्थी, केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय इम्फाल, मणिपुर विद्यावाचस्पति शोधार्थी, चौधरी चरणसिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय हिसार, हरियाणा अस्सिस्टेंड प्रोफेसर, कृषि महाविद्यालय श्रीगगानगर, राजस्थान

संरक्षण गुणों के लिए जाना जाता है।

मुख्य विशेषताएँ : सूखा सहनशीलता : सीमित जल में भी जीवित रह सकता है। मृदा सरक्षण इसकी जड़ें भूमि को पकड़ती है। और कटाव रोकती हैं।

डल्बर्गिया सिस्सू (शीसम) : शीसम एक तेजी से बढ़ने वाला, मजबूत व बहुउपयोगी वृक्ष है।जो शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों की परिस्थितियों में अच्छी तरह अनुकूलित होता है। यह वृक्ष भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में विशेष रूप से लकड़ी के लिए उगाया जाता है।

मुख्य विशेषताएँ : तेज वृद्धि दररू 20–25 वर्षों में पूर्ण विकसित हो सकता है। सूखा सहनशीलताः सीमित जल उपलब्धता में भी बढ़ सकता है, परंतु प्रारंभिक वर्षों में थोड़ी नमी आवश्यक होती है। बलुई दोमट, जलोढ़ तथा हल्की क्षारीय मिट्टियों में भी सफलतापूर्वक उगता है।

टीकम ग्रैन्डिस (सागवान) : सागवान एक मूल्यवान बहुवर्षीय वृक्ष है।जो अपनी बेहतरीन लकड़ी के लिए प्रसिद्ध है। यह गर्म जलवायु में अच्छे से बढ़ता है। और अर्ध–शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त मानी जाती है।

मुख्य विशेषताएँ : जलवायु अनुकूलन : उच्च तापमान सहनशील, 600–1200 मिमी वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त। गहरी, जलनिकास युक्त, दोमट मिट्टी में अच्छा विकास करता है।

जिजिफस मौरिशियाना (बेर): बेर एक बहुवर्षीय, फलदार वृक्ष है। जो शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में प्राकृतिक रूप से उगता है। यह वृक्ष कठोर जलवायु परिस्थितियों को सहन कर सकता है।और न्यूनतम जल की आवश्यकता रखता है। जिससे यह शुष्क क्षेत्रों के लिए अत्यंत उपयुक्त बनता है।

प्रमुख विशेषताएँ: जलवायु सहनशीलता मृदा – बलुई, दोमट, क्षारीय और पथरीली भूमि गहराई तक जड़ प्रणाली सूखे में पानी खोजने की अत्यधिक क्षमता आयु 25–30 वर्ष

अजाडिराच्टा इंडिका (नीम): नीम एक अत्यंत सहनशील, औषधीय और पर्यावरणीय रूप से लाभकारी वृक्ष है। जो विशेष रूप से शुष्क व अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में आसानी से उगाया जा सकता है। यह भारतीय उपमहाद्वीप का मूल निवासी वृक्ष है।

मुख्य विशेषताएँ : अत्यधिक सूखा प्रतिरोधी : बहुत कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी जीवित रह सकता है। (वार्षिक वर्षा 300 मिमी तक) क्षारीय, बलुई, बंजर व अनुपजाऊ मिट्टी में भी बढ़ता है। रोग व कीट प्रतिरोधक इसकी गंध और रसायन कीटों को दूर रखते हैं।

वन वृक्षों की प्रजनन रणनीतियाँ

शुष्क क्षेत्रों में वन वृक्षों की प्रजनन हेतु विशेष रणनीतियाँ अपनाई जाती है। जो निम्न प्रकार

1. चयन एवं सुधार : वन वृक्षों की प्रजनन रणनीतियों में 'चयन एवं आनुवंशिक सुधार' का उद्देश्य वृक्षों की उत्पादकता, गुणवत्ता, रोग प्रतिरोधकता, एवं जलवायु सहनशीलता को बेहतर बनाना होता है। इस प्रक्रिया में श्रेष्ठ गुणों वाले वृक्षों का चयन कर उनके बीज या वंश को आगे बढ़ाया जाता है।

2. वनस्पति प्रजनन तकनीक : वनस्पति प्रजनन एक ऐसी विधि है। जिसमें बीज की बजाय पौधे के किसी भाग (जैसे तना, जड़, पत्ती) से नए पौधों की उत्पत्ति की जाती है। इससे नए पौधे माता–पिता के समान आनुवंशिक रूप से समान होते हैं।

प्रमुख वनस्पति प्रजनन तकनीक

1. कटिंग : पौधे की डंडी, जड़ या पत्ती काटकर मिट्टी में लगाई जाती है। आमतौर पर शीशम, पॉपलर, बबूल आदि में उपयोग होती है।

2. कलम : एक पौधे की डाली को दूसरे पौधे की जड़युक्त भाग से जोड़कर नया पौधा तैयार किया जाता है। आमतौर पर आम, नींबू, जामुन आदि में प्रयुक्त।

3. कुंड : पौधे की डाली को मिट्टी के संपर्क में लाकर उसमें जड़ बनाकर अलग किया जाता है। आमतौर पर बेर, अनार प्रयुक्त।

3.संकरण प्रजनन : संकरण प्रजनन एक ऐसी रणनीति है। जिसमें दो भिन्न आनुवंशिक संरचना वाले वृक्षों को कृत्रिम रूप से परागण कराकर एक नया संकर वंश तैयार किया जाता है। जिसमें माता–पिता के वांछनीय गुण एक साथ होते हैं। इसका उद्देश्य वृक्षों की उत्पादकता, गुणवत्ता, रोग प्रतिरोधकता और अनुकूलन क्षमता को बढ़ाना है।

संकरण के प्रकार :

1. अंतःप्रजातीय संकरण : एक ही प्रजाति के दो भिन्न जीनोटाइप के बीच संकरण उदाहरण – शीशम की विभिन्न जातियाँ।

2. प्रजाति–विभाजित संकरण : दो निकट संबंधी किन्तु अलग प्रजातियों के बीच संकरण। उदाहरण: Eucalyptus camaldulensis × E- tereticornis

3. अंतर्जातीय संकरण : अलग–अलग वंश (genus) के पौधों के बीच, यह दुर्लभ होता है।

4. बायोटेक्नोलॉजिकल विधियाँ

बायोटेक्नोलॉजिकल विधियाँ वे आधुनिक तकनीकें हैं जो जैविक प्रणाली,

कोशिकाओं या उनके घटकों का उपयोग करके वृक्षों के आनुवंशिक सुधार, रोग प्रतिरोधकता, विकास दर, और गुणवत्तावर्धन में सहायता करती हैं। ये विधियाँ पारंपरिक विधियों से अधिक तेज, सटीक और नियंत्रित होती हैं।

प्रमुख बायोटेक्नोलॉजिकल विधियाँ:

1. ऊतक संवर्धन : प्रयोगशाला में पौधों की कोशिकाओं, ऊतकों या अंगों से हजारों True-to-type पौध तैयार करना। उपयुक्त वृक्ष : सागवान (ज्मां), यूकेलिप्टस, बाँस आदि।

2. डीएनए मार्कर तकनीक (Molecular Marker Techniques): वृक्षों के डीएनए स्तर पर विशेष गुणों की पहचान (जैसे – रोग प्रतिरोधकता, तेजी से वृद्धि) । MAS (Marker&Assisted Selection): चयन को तेज और सटीक बनाता है।

3. जीन इंजीनियरिंग : किसी वृक्ष में मनचाहा गुण (जैसे – कीटरोधी या सूखा सहनशीलता) डालने के लिए बाहरी जीन सम्मिलित करना। उदाहरण : कीट–प्रतिरोधी पॉपलर।

5. समन्वित वृक्षारोपण रणनीति

समन्वित वृक्षारोपण रणनीति एक ऐसी समग्र योजना है जिसमें वृक्ष प्रजनन, प्रबंधन, संरक्षण, एवं पुनःस्थापन से जुड़ी सभी गतिविधियों को वैज्ञानिक, पर्यावरणीय और सामाजिक दृष्टिकोण से समन्वित रूप से लागू किया जाता है। यह रणनीति वृक्षों के चयन, प्रजनन, रोपण, संरक्षण, कटाई और पुनर्जनन को एक सतत और संतुलित प्रणाली के रूप में देखती है।

निष्कर्ष

शुष्क क्षेत्रों में उपयुक्त वन वृक्ष अपनी प्रजनन रणनीतियों को पर्यावरणीय चुनौतियों के अनुसार ढालते हैं। ये वृक्ष अधिक संख्या में कठोर बीज बनाकर, सुप्तावस्था द्वारा सूखे को झेलकर, वर्षा ऋतु में अंकुरण करके, जड़ या ठूँठ से पुनर्जनन द्वारा, गहरी जड़ों से जल प्राप्त कर तथा वर्षा–निर्भर फूलने–फलने की रणनीति से अपनी प्रजाति को सुरक्षित रखते हैं। इस प्रकार इन वृक्षों की प्रजनन रणनीतियाँ इन्हें कठोर और प्रतिकूल शुष्क वातावरण में भी जीवित रहने और वनों के संरक्षण में सक्षम बनाती हैं।

संकरण के प्रकार :

1. अंतःप्रजातीय संकरण: एक ही प्रजाति के दो भिन्न जीनोटाइप के बीच संकरण उदाहरण : शीशम की विभिन्न जातियाँ।

2. प्रजाति–विभाजित संकरण : दो निकट संबंधी किन्तु अलग प्रजातियों के बीच संकरण। उदाहरण: Eucalyptus camaldulensis × E- tereticornis

3. अंतर्जातीय संकरण : अलग–अलग वंश (genus) के पौधों के बीच, यह दुर्लभ होता है।

4. बायोटेक्नोलॉजिकल विधियाँ

बायोटेक्नोलॉजिकल विधियाँ वे आधुनिक तकनीकें हैं जो जैविक प्रणाली, कोशिकाओं या उनके घटकों का उपयोग करके वृक्षों के आनुवंशिक सुधार, रोग प्रतिरोधकता, विकास दर, और गुणवत्तावर्धन में सहायता करती हैं। ये विधियाँ पारंपरिक विधियों से अधिक तेज, सटीक और नियंत्रित होती हैं।

प्रमुख बायोटेक्नोलॉजिकल विधियाँ:

1. ऊतक संवर्धन : प्रयोगशाला में पौधों की कोशिकाओं, ऊतकों या अंगों से हजारों True-to-type पौध तैयार करना। उपयुक्त वृक्षः सागवान (ज्मां), यूकेलिप्टस, बाँस आदि।

2. डीएनए मार्कर तकनीक (Molecular Marker Techniques): वृक्षों के डीएनए स्तर पर विशेष गुणों की पहचान (जैसे दृ रोग प्रतिरोधकता, तेजी से वृद्धि) । MAS (Marker-Assisted Selection): चयन को तेज और सटीक बनाता है।

3. जीन इंजीनियरिंग : किसी वृक्ष में मनचाहा गुण (जैसे –कीटरोधी या सूखा सहनशीलता) डालने के लिए बाहरी जीन सम्मिलित करना। उदाहरणः कीट–प्रतिरोधी पॉपलर।

5. समन्वित वृक्षारोपण रणनीति

समन्वित वृक्षारोपण रणनीति एक ऐसी समग्र योजना है जिसमें वृक्ष प्रजनन, प्रबंधन, संरक्षण, एवं पुनःस्थापन से जुड़ी सभी गतिविधियों को वैज्ञानिक, पर्यावरणीय और सामाजिक दृष्टिकोण से समन्वित रूप से लागू किया जाता है। यह रणनीति वृक्षों के चयन, प्रजनन, रोपण, संरक्षण, कटाई और पुनर्जनन को एक सतत और संतुलित प्रणाली के रूप में देखती है।

निष्कर्ष

शुष्क क्षेत्रों में उपयुक्त वन वृक्ष अपनी प्रजनन रणनीतियों को पर्यावरणीय चुनौतियों के अनुसार ढालते हैं। ये वृक्ष अधिक संख्या में कठोर बीज बनाकर, सुप्तावस्था द्वारा सूखे को झेलकर, वर्षा ऋतु में अंकुरण करके, जड़ या ठूँठ से पुनर्जनन द्वारा, गहरी जड़ों से जल प्राप्त कर तथा वर्षा–निर्भर फूलने–फलने की रणनीति से अपनी प्रजाति को सुरक्षित रखते हैं। इस प्रकार इन वृक्षों की प्रजनन रणनीतियाँ इन्हें कठोर और प्रतिकूल शुष्क वातावरण में भी जीवित रहने और वनों के संरक्षण में सक्षम बनाती हैं।

फरवरी माह के कृषि कार्य

डॉ. विजय प्रकाश, निदेशक अनुसंधान
स्वा. के. रा. कृ. वि., बीकानेर

सस्य विज्ञान :
सिंचाई की दृष्टि से रबी की फसलों के लिये फरवरी का महिना अत्यन्त महत्वूपर्ण है क्योंकि इस समय :(1) गेहूँ एवं जौ की फसलों में फलोवर प्रीमोडिया बनने की अवस्था रहती है। (2) अधिकांशत दलहन फसलों में घेघरे या फलियां बनने की अवस्था रहती है। (3) सरसों इत्यादि में फलियां विकसित होती है।

इन अवस्थाओं में फसलों में पानी नहीं दिया जाता है तो उत्पादन में विपरीत प्रभाव पड़ता है। यही वह समय है कि जब रबी फसलों के पौधे वानस्पतिक वृद्धि की अवस्था से जनन वृद्धि की ओर अग्रसर होते है तथा इसी समय तापक्रम भी बढ़ जाता है अतः गेहूँ, जौ सामान्य समय से बोया गया है उसमें बालिया बनने की अवस्था यानि कि बुवाई के लगभग 70 दिन पर तथा दाना बनने की प्रारम्भिक अवस्था (बुवाई के 85 दिन बाद) पर सिंचाई करें। इस प्रकार कुल 2 सिंचाईयां करे। देर से बोई गयी गेहूँ की फसल में 40 एवं 55 दिन पर सिंचाई करें।

– जौ की फसल में फूल आने तथा दाने की दुधिया अवस्था पर पानी की कमी नहीं रहने पाये। सिंचाई व्यवस्था होने पर सिंचाई अवश्य करें।

– सरसों की फसल में तीसरी और अन्तिम सिंचाई करें।

– जई की फसल में प्रत्येक कटाई के बाद सिंचाई करें तथा 15–20 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति हैक्टेयर देंवे। आवश्यकता पड़ने पर सिंचाई करें।

खरपतवार नियंत्रण :– बारानी एवं सिंचित फसलों में खरपतवार नियंत्रण करने के बावजूद जो खरपतवार पौधे खेत में रह जाते है उनमें फरवरी माह में बीज बन जाते है। बीजों को पककर झड़ने से पूर्व पौधे को काटकार या उखाड़कर नष्ट करना चाहिये। जिससे अगले वर्ष कम खरपतवार उग सके। रबी की प्रमुख खरपतवार है बथुआ, सेन्जी एवं प्याजी आदि।

– खेतों में खासकर सरसों, बैंगन एवं टमाटर आदि के खेतों के आस–पास ओरोबंकी (भम्पूड़ा) नामक खरपतवार जो इस क्षेत्र में पाई जाती है उसे बीज बनने से पूर्व उखाड़कर नष्ट करें तथा सरसों फसल में फसलचक्र अवश्य अपनावें एवम् वर्ष में एक बार खेत में गहरी जुताई अवश्य करें।

पौध व्याधि :
जीरा : झूलसा :– यह रोग अल्टरनेरिया बर्नसाई नामक फफूंद से फैलता है इस रोग के प्रकोप से पत्तियां व तने भूरे रंग के झुलसे हुये प्रतीत होते हैं। रोग का प्रकोप अधिक होने पर अधिकांश पत्तियां सूखकर मर जाती है। लक्षण दिखाई देते ही मैंकोजेब नामक फफूंदनाशी दवा का 2 ग्राम/लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें। इस छिड़काव को 15 दिन के अन्तराल पर दोहराये। **छाछिया रोग** :– यह रोग फसल की पकाव वाली अवस्था में आता है। प्रकोप होने पर पत्तियों व तने तथ बीजों पर सफेद पाउडर दिखाई देता है। यदि रोग पुष्प आने की अवस्था में ही आ जाता है तो बीज नहीं बनते है। यदि यह रोग देर से आता है तो बीज बनते तो है परन्तु छोटे व अधपके रह जाते है। फलस्वरुप उपज कम होती है एवं गुणवत्ता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। रोग के लक्षण दिखाई पड़ते ही केरोथेन 1 मि. ली./लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करें या 25 किलो गन्धक चूर्ण प्रति हैक्टेयर का भूरकाव करे या 2.5 किलो घूलनशील गंधक हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें।जीरे में उपरोक्त दोनो रोगों व कीट नियंत्रण हेतु पैकेज का दूसरा व तीसरा छिड़काव करें।

दूसरा छिड़काव :– बुवाई के 40–45 दिन बाद मैंकोजेब 0.2 प्रतिशत के साथ 300 मि.ली. डाइमिथोएट 30 ई.सी. या फास्फोमिडोन 250 मि.ली. को 60 लीटर पानी में घोल कर प्रति बीघा छिड़के।

तीसरा छिड़काव :– दूसरे छिड़काव के 10–15 दिन बाद मैंकोजेब + डाईमिथोएट+ केराथेन ई.सी. का छिड़काव करें।

चना : झूलसा रोग :– यह रोग एस्कोकाइटा रेबी नामक फफूंद द्वारा फैलता है। इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम जल शोषित धब्बों के रुप में दिखाई देते है जो धीरे–धीरे गोल भूरे किनारे तथा केन्द्र में पीलापन लिये धब्बों में परिवर्तित हो जाते है उग्र अवस्था में तनो व पत्तियों पर लम्बे धब्बों के रुप में दिखाई देते है। जिससे तने व डंठल सूख कर झुक जाते है। वर्षाती एवं आर्द्र वातावरण में यह रोग अधिक फैलता है।

नियंत्रण :– रोग के प्रारम्भिक लक्षण दिखाई पड़ने पर फसल पर क्लोरोथेनोनिल घुलनशील चूर्ण को एक ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करे।

सरसों एवं तारामीरा :– सफेद रोली :– रोग का कारक एल्ब्यूगो केण्डीडा है, इसे स्टेग हेड भी कहते है। इसके कारण पत्ती की निचली सतह पर सफेद अनियमित अन्दर के श्लेष्मि धब्बे बनते है जो शुरु से चिकने होते है बाद में ये फट जाते हैं। रोग की उग्र अवस्था में ये धब्बे तना, फूलों पर भी बनते है। फलस्वरुप फूलो का अग्र भाग फूल जाता है। इसे स्टेग हेड लक्षण कहते है। यह स्टेग हेड शुरु में हरा होता है तथा धीरे–धीरे भूरा होकर सूख जाता है उग्र अवस्था में ये फफोले तने तथा फलियों पर भी फैल जाते है।

रोकथाम :– लक्षण दिखाई देने पर 2 ग्राम मैकोजेब एक लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें तथा छिड़काव 15 दिन पर पुनः दोहराये।

तुलासिता रोग :– रोग जनक पेरेनोस्पोरा पैरासिटिका कवक है। रोग के कारण पत्तियां पीली पड़कर सूखने लगती है पत्तियों की निचली सतह पर चूण्र देखने को मिलता है। उग्र अवस्था में पौधा सूख कर मरने लगता है।

रोकथाम :– लक्षण दिखाई देने पर 2 ग्राम मैंकोजेब एक लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करे।

गेहूँ :– रोली रोग :– गेहूँ में मुख्यतः तीन तरह की (काली एवं तना रोली, पत्तियों की पीली स्ट्राइस रोली) रोली लगती है। इनमें से भूरी एवं पीली रोली लगने की संभावना रहती है। इन रोली के लक्षण दिखाई देने पर 2 ग्राम मैंकोजेब एक लीटर पानी की दर से घोल बनाकर छिड़काव करें तथा सुरक्षात्मक बचाव के रुप में गंधक चूर्ण 25 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से भुरकाव 15 दिन के अन्तराल पर दो बार करे।

झूलसा एवं पत्ती वहन रोग :– रोग जनक क्रमशः अल्टरनेरिया ट्रीटीसिना व हेल्मीथोस्थोरियम नामक कवक है लक्षण पत्तियों पर पीले भूरे अनियमित आकार के लम्बे धब्बों के रुप में दिखाई देते है। उग्र अवस्था में पूरी पत्तियां झूलसी हुई दिखाई देती हैं। रोकथाम हेतु लक्षण दिखाई देने पर 2 ग्राम मैंकोजेब एक लीटर पानी की दर से दिड़काव करें।

मैथी :– छाछिया रोग :– रोग जनक ईरीसाइफी कवक है जो पत्तियों पर सफेद चूर्ण के रुप में दिखाई देता है। रोकथाम हेतु लक्षण दिखाई देते ही केराथेन 1–1.5 मि.ली./लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें।

तुलासिता रोग :– रोग जनक पेरेनोस्पोरा कवक है। इस रोग से पत्तियों को ऊपरी सतह पर पीले धब्बे दिखाई देते है तथा नीचे की सतह पर कवक की वृद्धि दिखाई देती है। उग्र अवस्था में रोग ग्रसित पत्तियां झड़ जाती है। नियंत्रण हेतु मैंकोजेब 2 ग्राम/लीटर पानी में मिलाकर करें।

बेर :– छाछिया रोग :– रोग जनक ओईडियम नामक कवक है। इस रोग का प्रकोप सद्रग मौसम में दिखाई पड़ता है। इसमें बेर की टहनियां, पत्तियां एवं फल सफेद आवरण से ढक जाते है। प्रभावित पत्तियों एवं फलों की वृद्धि रुक जाती है। पत्तियां धीरे–धीरे पीली पड़कर गिर जाती है। उग्र अवस्था में यह टहनियों एवे फलों पर आक्रमण करता हैं जिसमें फल पक कर गिर जाते है। रोकथाम हेतु केराथेन एल.सी. 1–1.2 मि.ली. प्रति लीटर पानी के हिसाब से 15 दिन के अन्तराल पर 2–3 छिड़काव करें।

पत्ती धब्बा/झूलसा रोग :– रोग जनक अल्टरनेरिया कवक है। पत्तियों पर गहरे भूरे अनियमित आकार के धब्बे दिखाई पड़ते है। फलस्वरुप पत्तियां सूखकर गिरने लगती है। रोकथाम हेतु मैंकोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से लक्षण दिखाई पड़ते ही छिड़काव करें।

कीट नियंत्रण :– गेहूँ, जौ : मकड़ी (माईट) और तेला का प्रकोप दिसम्बर मध्य से शुरु होता है। इसका प्रकोप दिखने पर मिथाईल डिमेटोन 25 ई.सी. या डाइमेथोएट (30 ई.सी.) 1.25 लीटर/हैक्टेयर की दर से छिड़काव करें। इस छिड़काव से मोयला, माइट व तेला कीट की भी रोकथाम हो जायेगी।

चना : फलीछेदक लट : ये लटे हरे रंग की सवा इंच लम्बी व चौथाई इंच मोटी होती है जो बाद में भूरे रंग की हो जाती है। आरम्भ में ये चने की पत्तियों को खाती है और फली लगने पर उनमें छोटा छेद करके अन्दर का दाना खाकर खोखला कर देती है। इनकी रोकथाम के लिये फूल आने से पहले तथा फली लगने के बाद मेलाथियान 5 प्रतिशत चूर्ण या क्यूनालफास डेढ़ प्रतिशत चूर्ण या मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत चूर्ण या फेनवलरेट चूर्ण 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर भूरके। जहां पानी की सुविधा हो वहां फूल आने के समय क्यूनालफास (25 ई.सी.) मि.ली. या मोनोक्रोटोफास एक लीटर प्रति हैक्टेयर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें या स्पाइनोसिड 0.33 मि.मी./लीटर या इन्डोक्साकार्ब 200 मि.ली/ हैक्टेयर या इमामेक्टीन बेन्जोएट 0. 5 ग्राम/ लीटर पानी का घोल बनाकर छिड़काव करें ।

सरसों :– मोयला का प्रकोप होने पर मिथाइल पेराथियान 2 प्रतिशत चूर्ण 6 किलो प्रति बीघा अथवा डाइमेथोएट 300 मि.ली. घोल बनाकर छिड़काव करें।

उद्यानिकी :–

फल :– ऑवला, अनार, नींबू प्रजाति के वृक्षों में इस माह फूल खिलने का समय है। फूल खिलने पर सिंचाई रोक देवें। रासायनिक उर्वरकों का उपयोग नहीं करे एवं रासायनिक दवाओं का छिड़काव भी न करें। बेर के फलों की तुड़ाई–छटाई व विपणन सावधानीपूर्वक करें।

सब्जियॉ :– गर्मियों की सब्जियों के लिये बुआई का उपयुक्त समय है, निम्न कार्य करें।

क्र. स.	सब्जी	किस्म	बीज मात्रा (कि.ग्रा./हैक्टेयर)	रोप दूरी (पंक्ति–पंक्ति, पौध–पौध (सेमी.)	खाद, उर्वरक मात्रा (प्रति हैक्टेयर)
1.	भिण्डी	पूसा सावनी, पूसा मखमली, अर्का, अभय, अर्का अनमिका, परमनी क्रांति	20	30X15	150–200 क्विं. गोबर खाद खेत तैयारी के समय व 30 किग्रा. नत्रजन, फास्फोरस व पोटाश बुआई के समय।
2.	बैंगन	पूसा पर्पल लॉंग, पूसा क्रांति, पूसा पर्पल राउण्ड, पूसा अनमोल, अर्का नवनीत	0.400–0.500	30–40 दिन की पौध 60 X 60 दूरी पर	120–150 क्विं. गोबर खाद, 40 किग्रा. नत्रजन, 80 किग्रा. फास्फोरस एवं 60 किग्रा. पोटाश।
3.	टमाटर	पूसा रुबी, पेजाब बुआस, रोमा, हिसार अरुण पूसा हाईब्रिड 1.2	0.400–0.500 हाईब्रिडबीज 0.150–0.200	रोपाई 45 X 45 हाईब्रिड 75 X 75	150 क्विं. गोबर खाद व 60 किग्रा. नत्रजन, 80 किग्रा. पोटाश, हाईब्रिड के लिये 300–350 क्विं. गोबर खाद, 180 किग्रा. नत्रजन, 120 किग्रा. फास्फोरस व 80 किग्रा. पोटाश।
4.	मिर्च	मसाले हेतु:– एन.पी. –46 ए.ज्वला, मधानिया लॉंग, पूसा सदाबहार सब्जी हेतु:– यलोवेंडर, केलिकोनियावेडर, बुलनोज, अर्का मोहिनी।	1.0–1.5	60 X 40	150–200 क्विं. गोबर खाद। 70 किग्रा. नत्रजन, 40 किग्रा. फास्फोरस एवं 50 किग्रा. पोटाश।
5.	कुष्माण्ड कुल की सब्जिया :				
	लौकी	पूसा समर प्रजिफिक लॉंग, पूसा समय प्रालिफिक राउण्ड, पूसा मंजरी, मेघदूत	4–5	2.5X0.75	200–250 क्विं . गोबर खाद, 80–100 किग्रा . नत्रजन 40 किग्रा . फास्फोरस, 40 किग्रा. पोटाश।
	कद्दू	पूसार अलंकार, अर्का वेदन	4–5	3.0X1.25	
	करेला	कोयम्बटूर लॉंग, पूसा दो मौसमी, प्रिया, अर्की हरित, ग्रीन लॉंग	4–5	1.25X 0.50	
	तरबूजा	सुगर बेबी, दुर्गापुरा मीठा, केशर, अर्की ज्योती	4–5.5	2.50X1.00	
	खरबूज	दुर्गापुरा मधु, हरा मधु, पूसा मधुरस	1.5–2.0	2.0 X 0.5	
	तुरई	पूसा चिकनी, पूसा पसदार	4–5	1.5 X 0.5	
	टिण्डा	बीकानेरी ग्रीन, दिलपसंद, एस–48, अर्का टिण्डा	4–5	1.5 X 0.5	
	ककड़ी	अर्का शीतल, लखनऊ अगेती	2.0	1.5 X 0.5	
6.	ग्वार	पूसा नवबहार, दुर्गा बहार, एम–83	15–20	30 X 10	100–125 क्विं . गोबरखाद, 25 किग्रा. नत्रजन, 60 किग्रा . फास्फोरस।

Printed and published by Dr. Deepali Dhawan on behalf of Nidesak Prasar Shiksha and Printed at M/s Kishan Enterprises, Magaram Colony, Outside Jassusar Gate, Bikaner and published at Swami Keshwanand Rajasthan Agricultural University, Bikaner, Editor : Prof. Rajesh Kumar Verma.